हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़का ९१ वाँ ग्रन्थ

अशोक वन

और

अनारकली

तेलुगूके सुप्रसिद्ध लेखक श्री मुद्दु कृष्णके
एकाङ्की नाटकोंका अनुवाद
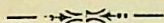
अनुवादकर्त्ता—

व्रजनन्दन शर्मा
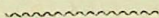
प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई
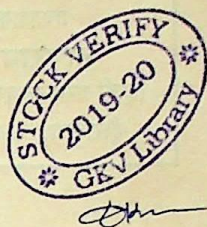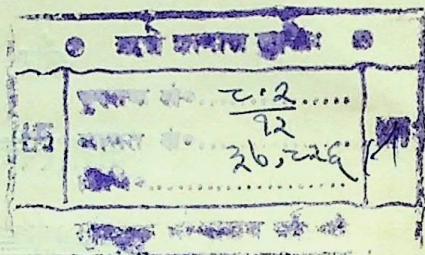
अनुवादकर्त्ताकी ओरसे

जब लोग कहते हैं कि हिन्दीमें अनुवादोंकी बाढ़ आगई है,—अब अनुवादोंकी जरूरत नहीं है, तब मैं सोचने लगतां हूँ कि क्या यह बात सच है ? क्या हिन्दी साहित्य इतना समुन्नत हो गया है कि अब अनुवादोंकी जरूरत नहीं ? या किसी भी समुन्नत साहित्यने अनुवादोंकी खिड़की बन्द कर ली है ? फिर हिन्दीके महारथी ऐसा क्यों कहते हैं ? और हिन्दीमें अनुवाद हुए ही कहाँ हैं ? यह हाय-तोबा, तो बंगलाके थर्ड क्लास उपन्यासोंके अनुवादके कारण ही मचा हुआ है। हिन्दुस्तानके भिन्न भिन्न साहित्य तो अभी हिन्दी-कलेवरमें आये ही नहीं हैं, राष्ट्रभाषाका दावा करनेवाली हिन्दी अभी दक्षिणापथके साहित्यसे तो सर्वथा अनभिज्ञ ही है। संस्कृतसे भी पुरानी तमिल भाषासे कितने रत्न आये हैं हिन्दीमें ? Italian of the East (तेलुगू) से कितने नमूने हिन्दी पाठकोंके सामने आये हैं ? कन्नड़ साहित्यकी कौन-सी विभूति हिन्दीकी शोभा बढ़ा रही है ? कहना पड़ेगा, कुछ भी नहीं। फिर अनुवादोंके प्रति यह उपेक्षा क्यों ?

आज मैं एक प्रकारके गर्वका अनुभव कर रहा हूँ कि शायद मैं ही वह प्रथम व्यक्ति हूँ, जो पहले-पहल हिन्दी पाठकोंके सामने दक्षिणी साहित्यकी एक उत्कृष्ट रचना रख रहा हूँ*। पर, प्रथम प्रयास होनेके कारण यह भय भी हो रहा है कि कहीं कोलम्बसकी तरह मैं हिन्दुस्तानके बदले अमेरिका तो नहीं पहुँच जाऊँगा ! यहाँके हिन्दी-तेलुगूके जानकर मित्रोंने विश्वास दिलाया है कि मैं ठीक रास्तेपर ही हूँ। पर, यह बात कहाँतक ठीक है, यह निर्णय विज्ञ पाठकोंके ऊपर है।

---

* 'तामिल-वेद' सस्ता साहित्यमण्डलने प्रकाशित किया है, परन्तु वह अँग्रेजीका अनुवाद है। मेरे अग्रज पं० रामानंद शर्माने तेलुगूके श्रेष्ठ उपन्यास मालपल्ली'का अनुवाद किया है, पर वह प्रकाशककी प्रतीक्षामें यों ही पड़ा है।

इस पुस्तिकाके मूल लेखक श्री मुद्दु कृष्णजी तेलुगूके नव्य-लेखकोंमें हैं और इस बातका प्रमाण उनकी रचना ही देगी। आप नवयुवक हैं, 'ज्वाला' नामक एक तेलुगू मासिक-पत्रिकाका सम्पादन भी कर चुके हैं। आपने अभी बहुत नहीं लिखा है; पर, जो कुछ लिखा है, अनमोल है। आपका स्वभाव बड़ा ही सौम्य है; पर, आपके विचार बड़े उग्र हैं। सचमुच आपकी लेखनी ज्वाला उगलती रहती है।

तेलुगूके आधुनिक लेखकोंमें Art for Art's sake वाले ही अधिक हैं। पर मुद्दु कृष्ण इसके अपवाद हैं। आपके लेख और कहानियाँ समाजके हृदयपर ऐसी चोट करती हैं कि पुरातन समाज या पुरातन विचारोंवाला नव्य समाज तिलमिला उठता है। निष्ठुर डाक्टरकी तरह समाजके रूढ़िगत भावोंकी चीर-फाड़ करनेमें आप सिद्ध-हस्त हैं।

यह पुस्तिका भी उसीका एक नमूना है। किस कला-पूर्ण ढंगसे पुरातनको नूतनमें ढाला है लेखकने,—सो देखनेकी ही वस्तु है! 'प्रेम' का जो रूप लेखकने निरूपित किया है वह भले ही लोगोंको युरोपीय मालूम पड़े, पर है वह मानवीय और शायद आदर्श भी। इस पुस्तिकामें तीन भाग-से हैं। एक 'अशोक वन', दूसरा 'अनारकली' और तीसरा लेखककी 'कैफियत'। 'अशोक वन' में जो उग्र सामाजिक विचार और कला है, वह तो है ही; उसके साथ-साथ और भी एक बात है जो हिन्दी पाठकोंको नई-सी प्रतीत होगी। वह है रावणका चरित्र। हम रावणके जिस चरित्रको देखने-सुननेके आदी हो गये हैं, उससे यह चित्र सर्वथा भिन्न है। यह रावण वाल्मीकि और तुलसीके रावणसे अपना बिल्कुल साम्य नहीं रखता। दक्षिणके कुछ आधुनिक विद्वानोंकी राय है कि लंकावासी दर असल वैसे नहीं थे, जैसा कि संस्कृत या अन्य भाषाके कवियों और लेखकोंने उन्हें चित्रित किया है। ऐसे विकृत चरित्र गढ़नेकी जड़में आर्य और अनार्यकी भावना काम कर रही थी। इस लेखकने भी 'कैफियत' में वही बात सामने रक्खी है।

परन्तु, वाल्मीकिके ऊपर जिस पक्षपातका आरोप लेखकने किया है, उससे खुद बचनेकी पूरी कोशिश की है। द्रविड़-पक्षपातके कारण आर्य राम और सीताका चरित्र दूषित नहीं किया है, वरन्, और भी उज्ज्वल बनानेका प्रयत्न किया है। हाँ, इस लेखकका माप-दण्ड वाल्मीकि या तुलसीके माप-दण्डसे जरूर

भिन्न है। यह बिल्कुल आधुनिक है; पर इसमें गुप्तजीकी आधुनिकता नहीं है। यह रामको आधुनिक ' मनुष्य ' रूपमें चित्रित करनेका सफल प्रयास है।

'कैफियत'में लेखकने रामपर जिस निर्दयतासे आक्रमण किया है, वह निर्दयता खुद रामका चरित्र चित्रित करनेमें नहीं दिखाई है। वरन् बहुत सहृदयतासे काम लिया है। सिर्फ नाटकीय भाग पढ़ जानेपर तो यह सन्देह भी नहीं रहता कि लेखक रामके प्रति ऐसे भाव रखता है।

' कैफियत 'में लेखकने अपने परिवर्तनों और विचारोंको तर्क और प्रमाणों-द्वारा उचित साबित करनेका प्रयास किया है। उसमें लेखकने अपने विचार रक्खे हैं। हो सकता है कि वे विचार सब लोगोंको मान्य न हों। पर लेखककी कला परखनेके वास्ते ' कैफियत ' पढ़नेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। हाँ, आर्य-अनार्यकी भावनाका, जो दक्षिणके कुछ साहित्यिकोंमें जड़ जमाये बैठी है, आभास जरूर इस कैफियतमें मिल जाता है।

' अनारकली ' लेखककी एक सुन्दर कलाकृति है जिसमें विचारोंका भी काफी प्राधान्य है। इसका तेलुगू पाठकोंमें बड़ा सम्मान है। तेलुगूमें यह अलग पुस्तिका रूपमें छपी है। इसका हिन्दी अनुवाद मैंने ' हंस ' में भी प्रकाशित कराया था। प्रकाशक महोदयकी रायसे वह भी इसीमें जोड़ दी गई है।

यह तेलुगू भाषाका अनुवाद है। तेलुगू द्रविड़ शाखाकी है। इसकी वाक्य-योजना बंगला या मराठीकी तरह हिन्दीसे मिलती-जुलती नहीं होती, अतः अनुवादमें भी ज़्यादा कठिनाई पड़ती है। इस अनुवादको मैं शुरू भी नहीं करता यदि तेलगूके श्रेष्ठ कवि और लेखक मित्रवर शिवशंकर शास्त्री मुझे इस ओर प्रोत्साहित न करते। उन्होंने ही लेखकसे परिचय कराकर ये पुस्तकें दीं और अनुवाद हो जानेपर एक बार सुन भी गये। इसलिए, इसका श्रेय बहुत-कुछ उन्हींको है।

यदि यह अनुवाद पाठकोंको पसन्द आया और प्रकाशकोंकी कृपा रही, तो तेलुगूके और भी सुन्दर तथा सुरभित सुमन हिन्दी जननीको भेंट करनेकी कोशिश बराबर जारी रखूँगा।

हिन्दी महा-विद्यालय
तेनाली (आन्ध्र)
६-५-३७ }

व्रजनन्दन शर्मा

समर्पण

जिन्होंने मुझमें साहित्यिक अभिरुचि पैदा की, तेलुगूके आँगनमें लाकर रख दिया, और 'जो कुछ मैं हूँ' उसे बनानेमें अपना 'बहुत-कुछ' व्यय किया उन्हीं

'भाईजी'

पं० रामानन्द शर्मा 'प्रेमयोगी' के

चरणोंमें यह रचना,—यद्यपि इसमें 'मेरा अपना' बहुत थोड़ा है, सभक्ति अर्पित है।

व्रजनन्दन

अशोक वन
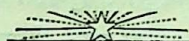
प्रथम दृश्य

[प्रातःकाल। मिथिलापुरी। विशाल उद्यान। तरह-तरहके वृक्ष और लतायें इस तरह सजी हैं मानो आज्ञानुसार ही बढ़ी और फैली हों। दो सुन्दर काश्मीरी वृक्षोंके बीचमें संगमर्मरके चबूतरेपर सीता बैठी है। एक सखी पास खड़ी बात कर रही है, दूसरी शीघ्रतासे प्रवेश करती है—]

दू० स०—राजकुमारी, लंकापति आना चाहते हैं!

सीता—अच्छा, बुलाओ।

(सखीका प्रस्थान)

[रावणका प्रवेश। २५ वर्षका युवक-सा। शरीर और मुख-मंडल गांभीर्यका सूचक। सीता उठकर स्वागत करती है।]

सीता—वह आसन—

रावण—अच्छा।

(पहली सखी काश्मीरी वृक्षोंकी छायासे दूर हट जाती है।)

सीता—लंकासे यहाँ तककी यात्रा बड़ी कष्टकर है!

रावण—नहीं, प्रयोजन-सिद्धिके लिए यह कोई बड़ा कष्ट नहीं।

सीता—(मुस्कुराकर) साहसी हो, इसलिए इसका ध्यान नहीं है ।

रावण—सो बात भी नहीं है ।—उत्साह आतुरतासे मिलकर दूरको समीप करनेमें समर्थ हो सका है ।

सीता—इतनी आतुरता क्यों ?

रावण—महाराज जनककी आज्ञा शिरोधार्य करने और अपने भाग्यकी परीक्षा लेने—

(सीता काश्मीरी वृक्षोंकी ओर देखती है ।)

रावण—शिष्टाचारके अनुसार तुम्हारी स्वीकृति ही लेने नहीं आया हूँ, वरन्, आया हूँ अपना हृदय खोलकर साफ साफ दिखाने ।

सीता—क्या ?

रावण—बिना किसी दुराव-छिपावके कहता हूँ, क्षमा करना । प्रेम-ज्वालासे धग् धग् जलनेवाले इस हृदयको जो शीतल कर सके उसकी खोजमें सारा विश्व छान डाला । पर इस अभागेको कहीं उस मूर्तिका दर्शन न हुआ ।—गत वर्ष जनक महाराज नगरको नये ढँगसे अलंकृत कर रहे थे । 'पुष्पक' पर काश्मीर जाते हुए यह नगर भी देखनेकी इच्छा हुई । विमान इसी नगरके ऊपरसे जा रहा था । मैं हाथमें दूर-दर्शक-यंत्र लिये नगरकी छटा देख रहा था । अकस्मात् तुमपर दृष्टि पड़ गई । तुम भी शायद सौधपरसे शहरकी सजावट देख रही थीं । मैं मुग्ध रह गया । तुम्हारा स्वरूप हृदयमें अंकित हो गया । इतनेमें तुमने ऊपर देखा । मुझे खयाल आया कि यह तो अन्तःपुर है और तुरत उधरसे दृष्टि फेर ली ।

सीता—(आश्चर्यके साथ) क्या ? गत आयुध-पूजाके समय उस रंग-बिरंगे विमानपर—

रावण—हाँ, हाँ, मैं ही था।

सीता—यह सोचकर कि कोई विदेशी उत्सव देखने आया है, दासीको भेजा भी था,—वेध-शालासे आह्वान करने। लेकिन—

रावण—अरे, मैं समझ न सका। अन्त:पुरपर इस तरह दृष्टिपात करना उचित न समझकर मैं आगे बढ़ गया। लेकिन, उसी क्षणसे मुझे न मालूम क्या हो गया। सुध-बुध न रही। वहाँसे कांचनजंघाकी चोटीपरसे होता हुआ त्रिविष्टपपुर पहुँचा। वह दिन और रात वहीं बीती। इतने दिनसे मैं जिसकी खोजमें था वह मिल गई, इस आनन्दने मुझे उन्मत्त बना दिया। तबसे आजतक प्रतीक्षा-निरत बैठा था। यह शुभ दिन,—यह स्वयंवर—

सीता—(एक लम्बी साँस लेकर) सखी, आसव ले आ।

रावण—(रोमांचित होकर मुखपर आये हुए स्वेद-कणोंको पोंछता हुआ) सीता, अपना हृदय खोलकर तुम्हें दिखाने आया हूँ। लेकिन, घबराहटके कारण कुछ सूझता ही नहीं कि क्या कहूँ! क्षमा करके—

सीता—रावण, मुझे पूज्य पितापर पूर्ण विश्वास है। उनकी आज्ञा ही मेरे पथका ध्रुव-तारा है। कल ही तो स्वयंवर है। (उसास लेती है)

रावण—(गद्गद स्वरसे) सीता, मुझे वचन देती हो?

सीता—समझ गई।

रावण—कृतार्थ हुआ।

सीता—रावण, कल—

(सखी पात्रमें आसव भर सीता और रावणको देकर अलग खड़ी रहती है।)

रावण—(मधु-पात्र एक ओर रखकर) सीता, शायद यह मेरी धृष्टता है, पर एक बात मेरे मनमें खटक रही है,—यही कि मैं शिव-भक्त हूँ और यह शिव-धनुष है। उसके चढ़ानेकी बात सोचकर मेरा मन बहुत ही व्याकुल हो जाता है।

(सीता सिर हिलाती है।)

रावण—स्वयंवरमें भाग लेने जितने राजा-महाराजा आये हैं, प्रायः सभीको मैं जानता हूँ। उन सबोंमें दो ही यह सामर्थ्य रखते हैं,—एक अयोध्याके राजकुमार राम और दूसरा मैं। पर उनमें और मुझमें एक अन्तर है। उनको यह दुविधा नहीं है कि यह शिव-धनुष है; पर, मेरा मन आगा-पीछा कर रहा है कि मनोरथकी सिद्धिके लिए गुरुका धनुष कैसे उठाऊँ? यह विचार कभी कभी भयंकर हो उठता है। सीता, कितना भी समाधान करता हूँ, पर,—सोचा नहीं था, कि यावज्जीवन जिसके लिए छटपटाता रहा, तड़पा किया,—उसीकी प्राप्तिके समय यह विषम समस्या—। —और भी एक सन्देह मेरे मनको व्याकुल कर रहा है। मैं रामचन्द्रकी तरह एकपत्नी-व्रत लेने अथवा अपना प्रताप दिखाने नहीं आया हूँ। जिस इच्छाके पीछे मैं जीवन-भर दौड़ता रहा, उसीकी प्राप्तिके समय यह विषम परिस्थिति आ खड़ी हुई। मेरा यह गर्व रहा है कि मेरे लिए असाध्य कुछ भी नहीं है। यदि यह गुरुका धनुष न होता तो मेरे लिए यह कोई बात न थी। किन्तु, यह गुरुतर अपराध भी तुम्हारे लिए करनेको तैयार हुआ हूँ। अभी मेरे अन्तरमें जैसी हलचल मची हुई है वैसी कभी मैंने जीवनमें अनुभव नहीं की। (रुक जाता है)——तुम सहृदय हो, सत्यको पहचान सकती हो;

इसलिए, साफ़ साफ़ कहता हूँ । गुरुपर भक्तिके कारण यदि शिव-धनुषको झुकानेमें हृदय कंपित हो जाय,—मैं हार जाऊँ, तो कुछ आश्चर्य नहीं । उस समय राम ही विजयी होंगे । तुम,—तुम,—(गद्गद कंठसे) तुम रामकी पत्नी हो जाओगी । लेकिन, राम पति नहीं होंगे । रामका जीवनोद्देश्य आदर्श शासक,—आदर्श राजा, बनना है, आदर्श पति बनना नहीं । उनका आदर्श उनको या तुमको सुखी न बना सकेगा । समस्त जीवन तुम्हारे पैरोंपर निछावर कर आदर और प्रेम करनेवाले प्रियतमकी ज़रूरत यदि तुम कभी महसूस करो तो मेरी खोज करना, यह रावण तुम्हें सदा लभ्य ही होगा । याद रक्खो, उन्मत्त होकर नहीं कह रहा हूँ, सीता—

सीता—(बहुत देरतक रुककर) मेरी बुद्धि या इच्छाका यहाँ कोई महत्त्व नहीं है। रावण, मैंने अपना सर्वस्व पिताकी इच्छा तथा विधिके हाथोंमें रख दिया है।—कल सबकी समस्याओंका समाधान——

रावण—यावज्जीवन शिवकी तपस्या की है, आज उस सबका फल 'तुम्हें' चाह रहा हूँ। देखूँ, गुरु कल परीक्षा लेते हैं या—

दासी—राजकुमारी, महाराज—

रावण—कल स्वयंवरमें—

सीता—स्वागत ।

रावण—कृतज्ञ हूँ—सीता, विदा ।

सीता—अच्छा ।

(रावण सीताकी आँखोंकी ओर देखता हुआ,—दृष्टि न फिरा सकनेके कारण रुककर, फिर अपनेको सँभालकर, चला जाता है ।)

[पर्दा रुक रुक कर गिरता है ।]

द्वितीय दृश्य

[सायंकाल । जनकपुरके राज-महलका अन्तर्भाग । उद्यानकी ओर द्वारवाला कक्ष । हंसकी आकृतिवाली धूपदानीमें सुगन्धित द्रव्य जल रहे हैं । उनका धुआँ हवाके कारण ऐंठकर तन्वंगीके अंगसे भी सुन्दर वक्रता और सुकुमारता लिये हुए ऊपरकी ओर उठ रहा है । मन्द मन्द मारुत धीरे धीरे सुगन्धि ला रहा है । सीताके अर्द्ध-निमीलित नेत्रोंकी दृष्टि उद्यानकी लता-राशिको पार करती हुई विविध स्वप्नोंका जाल बुनती हुई क्षितिजपर पड़ रही है । दासी धीरे धीरे प्रवेश कर अंचलके फूलोंको शय्यापर बिछाती है ।]

दासी—राजकुमारी, अयोध्याके राजकुमार रामचन्द्रने सूचित करनेको कहा है ।

सीता—लिवा लाओ । (ठीकसे बैठती है)

[रामका प्रवेश । बीस वर्षका वय मालूम पड़ता है । अन्तःसमीक्षावाले नेत्र हैं । सीता उठकर स्वागत करती है ।]

राम—मैंने नहीं समझा था कि मिथिला अयोध्यासे भी सुन्दर है ।

सीता—लेकिन, लोग कहते हैं कि अयोध्या जैसे बड़े बड़े भवन और वहाँ जैसी विचित्रतायें यहाँ नहीं हैं ।

राम—इस उद्यानके सदृश एक भी उद्यान मेरे राज्यमें नहीं है ।

सीता—वे दोनों पेड़ पिताजीने काश्मीरसे मँगाये थे ।

राम—बहुत ही सुन्दर हैं ।

सीता—चेहरेसे कुछ थकावट झलक रही है । सुना है कि मार्गमें, तथा विश्वामित्र मुनिके आश्रममें, कुछ श्रम उठाना पड़ा है ।

राम—नहीं नहीं, सो बात नहीं है । नदी, वन, पर्वत आदिका सौन्दर्य देखनेकी इच्छासे ही गुरुवरके साथ मैं पैदल आया ।

सीता—पैदल ही !

राम—अच्छा, मैं अपने हृदयकी एक-दो बातें कहने आया था—

सीता—हाँ, हाँ, अवश्य कहिए।

राम—मैं अपने जीवनको एक आदर्शका साधन बनाना चाहता हूँ और आदर्श-प्रधान जीवन कंटकमय होता है। प्रजाके प्रति पिताके समान अनुराग और वात्सल्य रखना, उसके वास्ते चाहे जितने संकट आवें सहना, उसके सुखके लिए अपने सुखोंको न्योछावर करना, आदर्श-मय जीवन बिताना तथा 'जनवाक्यं प्रमाणम्' को ही लक्ष्य बनाना,—संक्षेपमें यही मेरे जीवनके उद्देश्य हैं।

सीता—यदि प्रजाकी कोई अनुचित इच्छा हो?

राम—प्रजा उतनी दुष्ट और मूर्ख नहीं होती, यह मेरा विश्वास है। वैसी चाहना उनकी होगी ही नहीं।

सीता—हाँ, अधिकांश प्रजा सरल और अबोध ही होती है। पर, उनमें क्या कुछ दुष्ट प्रकृतिके नहीं होते?—वे दुष्ट ही कभी कभी उन सरल-चित्त लोगोंको अपनी ओर कर लेते हैं।

राम—हाँ, यह संभव है; संभव ही नहीं, सत्य भी है। वैसे मौकेपर मैं सत्यासत्यका निर्णय समयके हाथों छोड़कर प्रजाके इष्टानुसार ही करूँगा। समय ही सत्यको प्रकट करेगा,—धर्मको विजयी बनावेगा। तात्कालिक कष्ट मैं सहन करूँगा।

सीता—पर, वसे जन-मतका मूलोच्छेद कर शासन क्यों न किया जाय?—मैं सिर्फ आशय जाननेके लिए ही पूछ रही हूँ।

राम—यह पूछना ठीक भी है। क्यों कि, मुझे पूरा पूरा समझ-कर, मेरे आदर्शोंको स्वीकृत कर, यदि आज्ञा न दोगी तो मुझे कलके स्वयंवरसे कोई सम्बन्ध न रहेगा। सीता, मेरी पत्नी सब विषयमें मेरी

सहचारिणी बनेगी। वह सामान्य लोगोंकी पत्नियोंकी तरह न होगी। यह मैं जानता हूँ कि मेरा सोचा हुआ मार्ग मेरे जीवनको कष्टोंमें डालेगा। कभी कभी ऐसी ऐसी बाधायें भी उपस्थित होंगीं कि मैं अपना निश्चित-मार्ग छोड़नेपर तैयार हो जाऊँगा,—यह सब मैं समझता हूँ। मेरी सहधर्मिणी होनेवालीको कितनी वेदना होगी,—यह भी विचारता हूँ।—पर, स्त्री-हृदयको मैं थोड़ा थोड़ा पहिचानता हूँ।—आपदाओंको सहनेकी महत्तर शक्ति है उसमें। इस 'स्त्री' नामक अद्भुत् सृष्टिमें दूसरोंका दुःख देखकर अपने दुःखसे भी अधिक दुःखी होनेका एक महत् गुण है।

सीता—(गौरव-पूर्ण नेत्रोंसे देखती हुई) ये वाक्य मुझे लज्जित कर रहे हैं।

राम—स्वाभाविक विनम्रताके कारण।—तुम जनककी एक-मात्र लाड़िली पुत्री हो; वे तुम्हें आखोंकी पुतलीकी तरह पाल रहे हैं।

सीता—अरे, मैं व्यर्थ बीचमें बाधक बनी। मेरी बातें छोड़िए।—उन आदर्शोंके बारेमें पूरा पूरा सुननेकी उत्सुकता मैं नहीं रोक सकती।

राम—जब तक पूरा समझमें न आ जाय, तब तक तो तर्क करना ही चाहिए।

सीता—अवश्य। मुझे भी पूर्णतया जाननेकी इच्छा है।

राम—प्रजा-पालन करनेवाले राजाको जीवन-पर्यंत कैसे रहना चाहिए, यह आदर्श मुझे अपने जीवनमें चरितार्थ करना है। इसलिए, मेरा हाथ पकड़नेवाली भी उसीके अनुरूप तेजस्वी और दृढ हो, यह जरूरी है। मेरा निश्चित विचार है कि आवश्यकता

पड़नेपर अपने आदर्शोंके लिए,—प्रजाके लिए, अपने सारे-सुखोंका उत्सर्ग ही नहीं बल्कि राज्य भी (सिर झुकाकर), कलत्रतकका परित्याग भी,—चाहे वह कितना ही दुस्सह हो—(सीताकी आँखोंको देखते हुए)—इसलिए, खूब सोचकर, मुझे और मेरे आदर्शोंको पूरा पूरा समझकर,—मेरे द्वारा जीवनमें कैसे कैसे कष्ट आ सकते हैं उन्हें विचारकर, कल स्वयंवरके पूर्व मुझे खबर भेजना। उस वचनके बिना मैं स्वयंवरमें पैर नहीं रख सकता।

(दोनों कुछ देरतक निःशब्द बैठे रहते हैं।)

सीता—(महीन आवाज़में) रामचन्द्र, स्वयंवरकी घोषणाके पूर्व ही पिताने मुझसे कहा था कि शिव-धनुषको कोई साधारण मनुष्य नहीं चढ़ा सकता, इसलिए कोई महापुरुष ही तुम्हें मिलेगा।—मुझे पिताके ऊपर प्रेम और आदर ही नहीं, बल्कि उनके सत्संकल्पमें और उनकी पवित्रतामें अखंड विश्वास भी है। इसलिए, सब-कुछ मैंने पितापर और उस विधिपर ही छोड़ दिया है। कष्टोंसे मैं नहीं डरती। सहनशीलतामें मेरी माँके बाद ही कोई होगा। उनकी पुत्री कहाने लायक मेरी परीक्षा हो तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगी। आपके ये आदर्श बहुत उच्च हैं। डराना तो दूर रहा, ये मुझे उलटे आकर्षित ही कर रहे हैं।—रही कलकी बात, सो मैंने अपना भविष्य धनुषमें बाँधकर विधि और पिताके हाथों सौंप दिया है। अब मेरी अपनी इच्छा नहीं है। रावणके प्रश्नका भी मैंने यही जवाब दिया था।

राम—हाँ, मैं भी रावणसे मिला था। कहता था कि प्रणय-स्वरूपिणी देवीके वास्ते संसार-भर घूमा और अंतमें तुममें उस स्वरूपका

दर्शन किया । इसीलिए, शिव-धनुष भी उठानेको तैयार हुआ है । पूरा प्रेमी जीव है । जीवन किस तरह प्रेमसे, सुखसे, बिताया जाय, इसके सिवा वह कुछ सोचता ही नहीं ।

सीता—हाँ, सब साफ साफ कह गया है ।

राम—लेकिन, सीता, मेरे विचार उससे बिलकुल भिन्न हैं ।

सीता—हाँ ।

राम—तो कल स्वयंवरमें—

सीता—पधारें । मैंने सब समझ लिया है । वे सब आदर्श मुझे स्वीकार हैं ।

राम—कृतज्ञ हूँ । इससे अधिक क्या चाहिए । कष्टके लिए क्षमा—

सीता—नहीं, इसमें कष्टकी कौन-सी बात है !

राम—अच्छा, तो बिदा लेता हूँ ।

(दासीका प्रवेश)

दासी—राजकुमारी, माता——

सीता—(उठकर) अच्छा, बिदा ।

राम—बिदा । (प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

[पंचवटी । गोदावरीका किनारा । लताच्छादित तमाल वृक्षोंके नीचे स्वच्छ, सुंदर पर्णशाला । कुटीरके चारों तरफ मन्दार, बेला, चमेली, रजनीगन्धा, आदि पुष्पोंके पौधे झूम-झूमकर सुगन्धि फैला रहे हैं ।

एक मृगछौना वृक्षपर बैठे कौएको देखकर छलाँगें भर रहा है । हरसिंगारकी छायामें सोपानाकार बनी हुई शिलापर सीता-राम बैठे हैं । सीता विचारमग्न है । रामकी आँखें चारों ओर घूम रही हैं । सीताके कंधेपर हाथ रखकर राम उसे अपने पास खींचते हैं । सीता दीर्घ निःश्वास छोड़ती है ।]

राम—(दुःखसे) सीता, यह राम तुमको कितना कष्ट दे रहा है !

सीता—(शीघ्रतासे) यह मत कहो । बगलमें रामके रहते सीताको कष्ट !—ऐसा कभी मत सोचना ।

राम—नहीं, सीता, तुम सुकुमार हो—

सीता—(बीचहीमें) क्या तुम सुकुमार नहीं हो ? फिर क्या मैं ही ऐसी हूँ जो कष्टोंको सहन न कर सकूँ ?

राम—फिर भी बाल्य-कालसे ही तीर चलाना, घोड़ेकी सवारी करना, मल्ल-युद्ध आदि सीखनेसे मेरा शरीर कष्टोंका अभ्यासी हो गया है । पर तुम—

सीता—क्यों ? मैं क्या तीर चलाना, घोड़ेपर चढ़ना नहीं जानती ? मने भी य परिश्रम-साध्य विद्यायें सीखी हैं । तुम जितने सुकुमार हो, मैं भी उतनी ही सुकुमार हूँ । तुम्हारे कष्ट असह्य ह । तुम्हें राज्य, प्रजा, माता आदिकी अनेक चिन्तायें हैं, पर मुझे केवल एक ‘ राम ’ की चिन्ता है और मेरा राम मेरे पास ही है,—मुझे कष्ट क्या ?

राम—(प्रेमसे सीताका आलिंगन कर) सीता, तुम धैर्यमें, साहसमें, बलमें और सहन-शक्तिमें कम हो, यह मेरा मन्तव्य नहीं । लेकिन, अन्तःपुरमें दुःखकी छायासे भी अपरिचित रहनेवाली तुमको वन वन फिरानेका कारण मैं ही हूँ न ? यही—

सीता—सहचारिणी बनकर तुम्हारे साथ न जानेसे प्रजा निन्दा करेगी,—यह डर (रामकी आँखें छलछला आती हैं) मुझे यहाँतक नहीं लाया है । गुलामकी तरह तुम्हारी आज्ञासे भी नहीं आई हूँ । वरन् बिना राम सीता नहीं । इसलिए, इस अरण्यमें भी आनन्द ही है । राम मेरे साथ रहेंगे,—मुझे और कुछ नहीं चाहिए, यही सोचकर मैं आई ।

राम—सीता, धन्य हूँ मैं। उस दिन वन आनेके समय मेरे कारण तुम्हें कष्ट न पहुँचे, इसीलिए अवधि-भर मिथिलामें रहनेकी सलाह मैंने दी थी । परन्तु, उसी समय हृदयने प्रश्न किया—राम, तुम सीताके बिना जीवन धारण कर सकोगे ?

[सीता रामका अलिंगन कर एक क्षण तक अपना सिर उनके कंधेपर रखती है,—फिर उसास लेकर—]

सीता—प्रियतम, मुझे कुछ न चाहिए। भवन, राज्य, प्रजा, सेवक,—कुछ नहीं । इसी पर्णशालामें इसी तरह जीवन बीत जाय, यही आकांक्षा है। हिरनोंके ये झुंड, गोदावरीका यह कलकल, ये पुष्प, ये लतायें, ये तमालके सुन्दर वृक्ष और,—और मेरे यह राम,—बस, मेरे लिए यही बस है ।

राम—सीता, तुम्हारा प्रेम मेरे जीवनके बाँधको पारकर बह रहा है । तुम्हारे बिना जीना दुर्भर मालूम पड़ता है ।—लेकिन, सीता,

मुझे इन सुखोंसे तृप्ति नहीं। मुझे मालूम पड़ता है जैसे इससे भी अधिक,—इससे भी आगे, मेरे लिए कुछ है। बराबर सुखमें डूबते-उतराते हुए, निर्बाध आनन्दके साथ अटूट संगीतकी भाँति, अमृत-रसके अवारित प्रवाहकी नाईं, जीवन बितानेके लिए रावण ही विशेष उपयुक्त है। [सीता रामको मर्मभेदी दृष्टिसे देखती है।] परन्तु, सीता, मैं नहीं चाहता कि हम साधारण पति-पत्नीकी तरह सांसारिक सुखोंमें लिप्त होकर जीवन गवाँ दें। मेरी इच्छा होती है कि युग-युगान्तर तक संसारको प्रकाश-मार्ग दिखाते हुए आकाशके गंभीर नीलान्तरालमें तेजोराशि विकीर्ण करनेवाले उज्ज्वल नक्षत्रकी तरह तुम्हें इस विश्वके क्षितिजपर स्थापित करूँ और स्वयं भी तुम्हारे पास खड़ा होऊँ। पर कभी कभी तुम्हारे पवित्र-प्रेमकी अमृत-वाहिनीमें बहते हुए जब तुम्हारा प्रेम-सौन्दर्य बिजलीकी तरह आँखोंको चौंधिया देता है तब सोचता हूँ,—जीवनको सफल बनानेके लिए इस अद्भुत स्वर्गीय प्रेमकी प्राप्ति ही काफी है। मुझे सीताके सिवा और कुछ न चाहिए। सीता, इच्छा होती है, तुम्हारी सुन्दर छायामें अपनेको पूर्ण रूपसे मिलाकर, आत्म-विस्मृत होकर, प्रेमोन्मत्त बन जाऊँ और इन अनावश्यक चिन्ताओंको छोड़ दूँ। परन्तु, उसी क्षण एक अदृश्य तर्जनी मुझे मार्ग दिखाती हुई मानों संकेत करती है,—'राम, यह देवी सीता हृदयको साहस देनेवाली है, एक प्रकाश-पुंज है, पुरुषार्थ साधनेके लिए विश्वके कल्याणार्थ अवतरित देवता है। सावधान! तुम्हारा आनन्द तुम्हारी आँखें बन्द कर रहा है। ख़याल रखना, अपने उद्देश्योंको भूल रहे हो'—सीता, तुम मेरी दृष्टिमें महादेवी ही प्रतीत होती हो। यदि तुम केवल अपना सुख ही चाहो

तो उसके लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर, भौतिक आनन्दोंमें डुबानेकी सामर्थ्य रखनेवाला वह रावण ही तुम्हें—

(सीता रामका मुँह बंद करती है। दोनों आलिंगन-पाशमें बद्ध हो जाते हैं। इसी समय बाहरसे 'सीता-राम'की ध्वनि आती है। दोनों चौंक उठते हैं।)

राम—यह गंभीर स्वर किसका है ?

सीता—यह तो रावणके कण्ठ-स्वर जैसा है !

राम—हाँ है तो !—तुम्हें कितना याद है !!

[रावणका प्रवेश। साथमें धनुष-बाण लिए लक्ष्मण हैं। वे एक पग आगे रखकर रुक जाते हैं। रावणको पहले सीता देखती है। रावणके हाथ उठाते ही सीता और राम अभिवादन करते हैं।]

सीता-राम—रावण, स्वागत ! स्वागत !

रावण—धन्योऽस्मि। राम, लक्ष्मण कितना गरम हो रहा है, देखो तो !

राम—क्यों ?

रावण—पहले तो इसने मुझे इधर आनेसे रोका और फिर झट खींच लिया तरकससे तीर ! देवी सीताके ऊपर उसकी भक्ति देखकर मैं शांत रह गया।

(लक्ष्मण तीव्रत्तर दृष्टिसे रावणको देखते हैं—)

राम—(मुस्कुराते हुए) भाई, रावण अतिथि हैं, इसलिए गौरवास्पद हैं।—(रावणसे) तुम्हारा आना, हमें आश्चर्यमें डाल रहा है। अभी प्रसंगवश तुम्हारी ही बात हो रही थी।

(लक्ष्मण कुटीरके पीछे घने निकुंजमें चले जाते हैं।)

रावण—(प्रसन्नतासे) भला, क्या आपको मैं जानता नहीं हूँ ?

सीता—(मुस्कराकर) रावण, यहाँ यह शिला ही आसन,

गोदावरीका शीतल समीर और वन्यलताओंका सौरभ ही आतिथ्य है। इससे अधिककी इच्छा भी न करना। उस शिलासनपर बैठो।

रावण—(प्रसन्नतासे) जहाँ तुम लोग रहते हो, आनन्द वहीं रहता है। तुम्हारे हृदय जो अपूर्व आतिथ्य देते हैं, उससे शीतल दूसरा आतिथ्य क्या होगा ?

सीता—नहीं, नहीं। शबरीके आतिथ्यको देखते तो तुम ऐसा न कहते।

रावण—हाँ, मैंने सुना है उस महाभक्ताके बारेमें। त्रिलोकमें ऐसा कौन होगा जो सीता-रामका आवाहन कर उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित न करे ?

राम—रावण, शबरीकी कहानी आ-चन्द्रतारार्क रहेगी। ओह, क्या मुग्ध भक्ति थी! मैं तो अपनेको देखकर ही लज्जित हो गया। इतना—

रावण—और मैं अब लजा रहा हूँ कि मैं ही वह शबरी क्यों न हुआ ?

सीता—क्या दिल्लगी है!

रावण—यह परिहास नहीं। अन्तरतमसे निकली वाणी है।

राम—लंकेश्वरकी ऐसी हालत क्यों ?

रावण—मैं एक कार्यसे आया था, उसमें—

सीता—क्या है वह कार्य ? हम अपनी शक्ति-भर सहायता करेंगे, कहो।

राम—हाँ, हम सावधान हैं। कहो, क्या है वह कार्य ? हमसे होनेवाला हो तो——

रावण—हाँ, तुमसे ही होगा।

सीता—तो फिर सोच-विचार क्या ? देर क्यों ?

रावण—संकोच हो रहा है,—शायद स्वीकृत न हो।

सीता—असल बात क्यों नहीं कहते ? यह भूमिका क्यों ?

रावण—जबसे तुम लोगोंने अयोध्या छोड़ी, तभीसे मेरा मन आन्दोलित हो रहा है। सुना कि कैकेयीके वशीभूत महाराज दशरथ-की आज्ञासे तुम लोग चौदह वर्षके लिए वनवासी हुए हो। तुम लोग जब चित्रकूटमें ठहरे थे, तभी मिलनेकी इच्छा हुई; पर पुनः सन्देह हुआ,—कहीं मेरी प्रार्थना अस्वीकृत हुई तो ? फिर सोचा, प्रयत्न करके तो मुझे देखना चाहिए। इसी सोच-विचारमें अब तक बैठा रहा। कल शबरीकी कहानी सुनकर बड़ी लज्जा हुई कि मैं ही वह पहला व्यक्ति क्यों न हुआ ?

सीता—अरे भई, असल बात तो कहते ही नहीं !

रावण—इस घोर अरण्यमें मैं आप लोगोंकी तकलीफ नहीं देख सकता। मुझे कष्ट हो रहा है।

सीता—तुम नहीं जानते, तुम इसे कष्ट समझ रहे हो। हमारे साथ कुछ दिन रहो तो यहाँका सुख मालूम पड़े।

रावण—धन्य हुआ मैं।

राम—रावण, तुम्हारे भाव स्पष्ट नहीं हुए।

रावण—मेरी एक छोटी-सी अभिलाषा है।

सीता—ओह ! तो कहते क्यों नहीं ?

रावण—लेकिन तुम लोग कहीं अन्यथा न समझ लो। मुझे सीता-पर तथा तुमपर जो प्रेम और आदरका भाव है, वह तुम लोगोंसे

छिपा नहीं है। तुम लंकापुरीमें रहकर बाकी अवधि पूरी करो। इस पंचवटीसे अयोध्याकी अपेक्षा लंका समीप है।

राम—रावण, तुम्हारे प्रेम और आदरके लिए हम बराबर कृतज्ञ हैं और रहेंगे। परन्तु, यह नहीं हो सकता।

रावण—सुनो राम, मैं लंकाका राज्य,—अपना सर्वस्व, तुम्हारे अधीन कर दूँगा। मैं वहाँ न रहूँगा। क्योंकि, इससे तुम लोगोंकी कुछ बदनामी होगी। मैं आग्नेय दिशाकी ओर जाकर नूतन राज्यकी स्थापना करूँगा।—सीता इस अरण्यमें!!—राम, मुझे बड़ी वेदना हो रही है!

सीता—तुम्हारा मन उस पवित्र सुख और अनिर्वचनीय आनन्दानुभवको ग्रहण नहीं कर रहा है, जो हमें यहाँ प्राप्त है।

राम—सीताने ठीक ही कहा। तुम्हारे इस प्रेम-पूर्ण निमंत्रणको हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्षमा करो। पिताकी आज्ञा-पालनके लिए जिस दिन मैं अकेला ही बन आनेको तैयार हुआ और सीताको मिथिला भेज देना चाहा,—और सीताको वह मंजूर न हुआ, उसी समय मैंने समझा था कि इसमें कुछ विधिका भी हाथ है।

रावण—राम, तुम्हारी अथाह गहराई न मालूम क्यों मुझे आकर्षित कर रही है।

सीता—अब तुम रामको समझ रहे हो।

रावण—लंकामें सब सुख-सामग्रियोंके रहते हुए भी तुम लोगोंका ध्यान बराबर रहनेके कारण मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

सीता—(दुःखके साथ) हम विवश हैं।

राम—रावण, सीताकी सहन-शक्ति तुम नहीं जानते। मुझे ही

२

यह धीरज दिया करती है। हमारे बारेमें उतना सोच-विचार करनेकी ज़रूरत नहीं।

रावण—हाँ, यह सब मैंने पहले ही सोच लिया था। फिर भी, तुम चाहो तो लंका तुम्हारे अधीन है। मैं तुम्हारा इच्छानुवर्ती हूँ। सीताके लिए सब-कुछ करनेको तैयार हूँ।

सीता—रावण, तुम और रामचन्द्र केवल मेरा गुण-गान करते हो; पर तुम्हारी महती शक्ति देखकर मैं भी अपनेको पिछड़ी हुई समझती हूँ।

राम—हाँ, इसमें बड़ी उदारता है। कल तुम्हारी छोटी बहिन आई थी और हमारे सुख-दुःखमें हाथ बँटानेका बहुत आग्रह करती थी। उसको रोकना बहुत कठिन हो गया। सीताके बहुत विनती करनेपर ही हटी।

रावण—अच्छा, हम सदा ही तुम्हारे अधीन हैं,—यही काफी है।

राम-सीता—वाह! वाह! कैसी बात कहते हो!

राम—लक्ष्मण, रावणके हाथ-पैर धुलवानेका आयोजन करो।

सीता—लक्ष्मण क्यों, मैं किये देती हूँ।

चतुर्थ दृश्य

[पंचवटीके पास गोदावरीके उसपारका जंगल । रावण बहिनसे मिलता है। उसका रूप देखनेवालोंको एकाएक आकर्षित कर देनेवाला है ।]

रावण--सूना, इधर क्यों आई ?

शूर्पनखा—(हँसती हुई) तुम क्यों आये ?

रावण—बिलकुल अनजान-सी पूछती हो ?—सीताको देखने ।

शू०—और मैं, तुम्हारी सहायताके लिए आई हूँ। क्या समाचार है ?

रावण—भला, क्या सहायता करोगी ?

शू०—सीता-प्राप्तिके उपाय करूँगी । सुनो, हँसी नहीं—

रावण—यह तो हास्यास्पद बात है । सीताका हृदय मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ । वह रामको अपने शरीरके अणु-अणुसे प्यार करती है । उनका अद्भुत जीवन देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

शू०—समरांगणमें तुम जितने शूर हो स्त्री-हृदयके समक्ष उतने ही कातर । इसीलिए, आजतक तुम इच्छानुकूल प्रेम न प्राप्त कर सके ।

रावण—सूना, आज तुम अजीब ढंगसे बातें कर रही हो ।

शू०—यह सब नहीं । मैं जो कहती हूँ, करो ।

रावण—अब कोई फायदा नहीं । इतना ही नहीं, और एक बात है । मैं इसे पाप भी समझता हूँ । अब सीताके लिए एकान्तमें चिता-काष्ठकी तरह राख हो जाना ही उत्तम है ।

शू०—छिः, पागलोंकी तरह बातें मत करो ।

रावण—सूना, तुम नहीं जानती हो । सीताके प्रथम दर्शनसे ही यह तुम्हारा भाई बिलकुल बदल गया है । मेरा सारा जीवन, मेरा

सारा जगत्—सीता, सीता, सीता——(आकाशकी ओर देखता और निःश्वास छोड़ता है ।) सीता, सीता, सीता !

शू०—(सिर हिलाते हुए) भैया, इतना निराश होनेकी ज़रूरत नहीं है । मैंने भी रामसे प्रेम किया है । अपने जीवनमें वैसे सुन्दर पुरुषको मैंने नहीं देखा । मैं उसके लिए सब-कुछ करनेको तैयार हूँ । उसके बिना बड़ी यंत्रणा सह रही हूँ। लेकिन, तुम्हारी बातें विचित्र-सी मालूम पड़ती हैं। तुम तो सीतासे भी बढ़ी-चढ़ी सुन्दरियोंको जानते हो ।

रावण—ऐसा न कहना । मेरे अन्तरक परिवर्तनको तुम नहीं जान सकतीं ।

शू०—(हँसती हुई) वाह, कितने बदल गये हो भैया, तुम ! फिर भी सुनो । कल बहुत देर तक मैं उन लोगोंके पास थी । लक्ष्मण तो एकदम बेवकूफ-सा मालूम पड़ता है । मुझे अन्दर जाने ही न देता था । इतनेमें रामने देखा और बुलाया । आह, राम कितना नम्र है ! बहुत देर तक वहाँ रही । लक्ष्मण तो एकदम पत्थर—

रावण—उसको भाई-भौजाईकी सेवा करनेके सिवा और कोई चिन्ता ही नहीं । उन लोगोंके काँटा भी चुभे, यह वह नहीं सह सकता । हम दाक्षिणात्योंसे न मालूम क्या हानि हो, इसलिए वह सदा सावधान रहता है । वह भी बड़ा अच्छा आदमी है । मिथिलामें मैंने जब अपने प्रेमका वर्णन रामसे किया था, तब उसने भी सुना था । उस दिनसे मुझपर और मेरे आदमियोंपर बराबर उसको सन्देह रहता है । विवाह-बन्धनका प्रेमसे कोई सम्बन्ध नहीं । वह बेचारा नहीं जानता कि प्रेम उस बन्धनको आसानीसे तोड़ सकता है । वह आर्य-धर्मके सिवा हम लोगोंके धार्मिक आचारको कभी स्वीकार

नहीं कर सकता। हमारे धार्मिक और सामाजिक विधानोंको निष्पक्ष-दृष्टिसे वह देख ही नहीं सकता।

शू०—और राम ?

रावण—उनकी विशाल दृष्टि है। उनकी बात ही दूसरी है।

शू०—है न ? कैसा आदमी है !

रावण—अच्छा, तुम अपनी हालत तो कहो।

शू०—मैं जब तक वहाँ रही, देखा, राम मुझपर प्रसन्न ही है।

रावण—मुझे विश्वास नहीं होता।

शू०—लेकिन तुम वहाँ होते तो अवश्य विश्वास होता।

रावण—अच्छा, तो चलो, चलें।

शू०—मैं अभी नहीं आ सकती। अपना व्रत-फल पानेका मार्ग ढूँढूँगी। रामको अब एकान्तमें ही देखूँगी। पर, तुमको देखकर एक विचार सूझा है।

रावण—वह क्या ?

शू०—तुम एक तरहसे पागल हो रहे हो। आज तक तुम संसारमें निर्बाध विचरण करते रहे। लेकिन, अब तुममें विचित्र कायरता समा रही है।

रावण—मैं बदला हूँ, यह तो ठीक है। पर, तुमने क्या विचारा है सो तो कहो।

शू०—कुछ नहीं। स्त्री और पुरुषके,—उसमें भी खास कर स्त्रीके प्रेम-जीवनमें ईर्ष्याका स्थान अधिक रहता है। तनिक वियोग भी न सहन कर सकनेवाले प्रेमियोंके मध्यमें ईर्ष्या खटाईका काम करती है।

रावण—हाँ।

शू०—अच्छा, तुम सीतासे प्रेम करते हो न? और मुझे रामपर—

रावण—तो ?

शू०—इसलिए हम दोनोंके फायदेका एक अनुकूल मार्ग है। तुम बहुत प्रयत्न करके भी सीताको अपने प्रति उन्मुख न कर सके। लेकिन राम मेरे ऊपर प्रसन्न हीं हैं।

रावण—अविश्वसनीय बात है! आश्चर्य—

शू०—प्रेम विचार और तर्कसे समझमें आनेवाली चीज़ नहीं है। इन बातोंको ग्रहण करनेवाला हृदय है। रामको तुम नहीं जानते। मैं जो कहती हूँ, सुनो।

रावण—(विचारपूर्वक) अच्छा, कहो।

शू०—मैं रामको अलग ले जाकर सीताके हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न करूँगी और उसी समय तुमको खबर करूँगी। बस, तुम बिना विचारे आकर सीताको लंका ले जाना।

रावण—कोई फायदा न होगा। तुम भूल कर रही हो।

शू०—बस, यही एक मार्ग है, दूसरा नहीं। तुम स्त्री-स्वभावको नहीं जानते हो। मेरे कहे मुताबिक करो। सीता रामके साथ बहुत कष्ट पा रही है। ये नदी, बन, पर्वत चाहे कितने ही रमणीय हों, मनोमोहक हों, पर कभी कभी रामकी विचित्रतायें सीताको उबा देती हैं। उस दिन सीता कह रही थी—'प्रिय, हम लोग इसी तरह सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत कर दें, फिर प्रजा और राज्य वगैरहकी झंझट क्यों?'—इसपर रामने एक व्याख्यान झाड़ डाला।—'सीता, मैं जब तुम्हारे प्रेमामृत-प्रवाहमें बहता रहता हूँ, उसी समय एक अदृश्य उँगली उठकर कहती है—राम, सावधान। तुम अपने उद्देश्योंसे दूर हुए जा रहे हो, तुम्हारे लक्ष्यकी पूर्त्तिके

वास्ते ही सृष्टिने एक शक्तिको सीता-रूपमें निर्माण किया है,—सावधान ! '

रावण—(आतुरतासे) अच्छा, तो सीताने क्या कहा ?

शू०—सीताने कुछ न कहा । अभी रामका व्याख्यान थोड़े ही समाप्त हुआ ! उन्होंने अन्तमें कहा,—'सीता, यदि तुम प्रेम-प्रधान जीवन ही व्यतीत करना चाहो, तो, भौतिक सुखोंका अद्वितीय उपभोगी,—अपना सर्वस्व निछावर कर तुम्हें ही सब-कुछ समझनेवाला रावण ही तुम्हारे योग्य है । '

रावण—सच, सूना ?

शू०—इसमें एक भी बात मेरी अपनी नहीं है । इसीलिए तो, इतने धीरजसे कह रही हूँ ।

रावण—अच्छा, तो सीताने क्या कहा ?

शू०—कुछ कहना ही चाहती थी कि तुमने 'सीता–राम' कहकर पुकारा ।

राव०—तो यह सब मेरे आनेके पहले ही हो रहा था ? ओह, मैं कैसा अभागा हूँ ! सीताके जवाबमें ही मैं विघ्न-स्वरूप आया । उसी जवाबमें मेरा भविष्य निहित था । हाय ! (उसास लेता है)

शू०—लेकिन वह जवाब ही समझो ।

रावण—क्या ? क्या ?

शू०—रामने पूछा—'यह गंभीर स्वर किसका है ?' सीताने तुरत जवाब दिया,—'रावणका । '

रावण—(प्रसन्नतासे) सूना,—सचमुच ? सच कहती हो ? ओह ! मेरा शरीर काँप रहा है । सच कहती हो सूना ? (पार्श्वके वृक्षपर शरीर टेक देता है ।)

शू०—सुनो, अभी ढीला पड़नेसे काम न चलेगा। (रावणके कंधेपर हाथ रखकर) मुझे तभी पूरी उम्मीद हो गई। सीताका हृदय बड़ा गंभीर है। उस गंभीरताके सबसे निचले स्तरमें तुम हो। पुरुषोंमें ही विवाहको पवित्र बंधन माननेका वहम है। स्त्रियाँ तो जिधर उमड़ता हुआ प्रेम दिखाई पड़ता है, उधर ही झुकती हैं। राम अगर पास न हों तो सीता प्रजाका और विवाह-बन्धनका ख्याल कर तुम्हारे निर्मल-प्रेमका कभी तिरस्कार नहीं कर सकती। अगर तुम उसे लंका ले जाओ और वहाँ अपना प्रेम प्रदर्शित कर उससे पुरानी बातें भुलवा सको, तो वह निश्चय ही तुम्हें स्वीकार करेगी। इधर अकेलेमें मैं रामको वश कर लूँगी। इसके सिवा दूसरा रास्ता नहीं है।

रावण—(खूब सोचकर) मेरा मन व्याकुल हो रहा है। तुम्हारी बातें आकर्षित कर रही हैं। लेकिन, पुनः सन्देह होता है कि क्या उन मेरुके समान अचल व्यक्तियोंमें परिवर्तन हो सकेगा?

शू०—भाई, ये बातें सोचनेसे समझमें नहीं आ सकतीं। इस समस्याका समाधान बुद्धिसे या तर्कसे नहीं होगा। यह होगा हियावसे, जोशसे, हृदयावेगसे, साहससे। राज्य छोड़कर, सुख छोड़कर, हरदम 'सीता सीता' चिल्लाते हुए सूखकर काँटा होनेकी अपेक्षा एक बार उसको पानेके लिए प्रयत्न कर देखना क्या ठीक न होगा? यह ढीलापन क्यों? अब सोचना छोड़ो और हृदय जिधर बतावे उधर आँख मूँदकर कूद पड़ो। सीताको अपने वशमें करो। प्रेम-ज्वालासे जलनेवाले प्रेमके लिए सर्वस्व अर्पण करने-वाले हृदयको देखकर स्त्री बिना पिघले नहीं रह सकती। सीताका भी हृदय स्त्री-हृदय है, वह शून्य नहीं है।

रावण—(गंभीरतासे) सूना, अब विचारना नहीं है। मैंने अब आँखें मूँद लीं। तुम्हारी प्रेरणा मुझे चुंबककी तरह खींच रही है। अब जीवनको ही दाँवपर रख दूँगा। हार या जीत,—बस, यह निश्चय है।—हाँ, अब विचारना नहीं है! सोचनेका काम नहीं है! सीताका प्रेम या सर्वनाश! बस, दूसरा नहीं।——सब बदल रहा है,—मेरा जीवन, मेरा हृदय, मेरी दुनिया,—सब बदल रही है।——अब सोचना नहीं है।——या तो महाप्रणय ही होगा या महाप्रलय।——सूना, मेरे लिए दोनों समान ही हैं।——बस, यही निर्णय है। अब नहीं सोचूँगा। आँखें नहीं खोलूँगा। मेरे वास्ते सीता ही,—सदा सीता ही,—बस! उसीके लिए सब। सूना, निश्चय! निश्चय!!

शू०—भैया, कोई भय नहीं, सब शुभ ही होगा।

रावण—(आलिंगन कर) सूना, तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मुझे तुमने रास्ता दिखाया है। बराबर तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा।

शू०—यह पागलपन क्यों? खबर देते ही आ जाना। मारीचको मेरी सहायताके वास्ते भेज दो तुरत। बस, अब सीता तुम्हारी है। देखना, भूल न—

रावण—सूना, निश्चय है। तुम्हारा समाचार सुननेके लिए मेरा सारा शरीर कान होकर रहेगा। समाचार आनेके दूसरे ही क्षण सीता लंकामें होगी।

शू०—बस बस। यह है मेरे भाईकी धीरता! मैं जाती हूँ। पर्वतपर रामके एकान्त-विहारका समय हुआ। अच्छा भाई, मैं अब—

रावण—सूना, सावधान! मैं भी जाता हूँ।

(निष्क्रमण)

पंचम दृश्य

[लंकामें अशोक-वन । जहाँ तक दृष्टि जाती है अशोक ही अशोक नज़र आते हैं । एकके पीछे एक वलयाकार बने हुए मार्ग निकुंजोंसे सज्जित हैं। हर-एक मोड़पर लता-मण्डित मरकतका चबूतरा है । उद्यानके मध्यमें वृत्ताकार सफेद फूलोंकी पंक्ति । बीचमें अशोक-वृक्ष । उसकी जड़में चारों ओर मरकतकी वेदी । उसपर सीता बैठी है ।]

रावण—(प्रवेश कर शीघ्रतासे) सीता !

(सीता सिर उठाकर देखती है ।)

रावण—सीता !

सीता—आओ, इधर आकर बैठो ।

(रावण बैठता है । उससे कुछ बोला नहीं जाता ।)

सीता—इतना उद्वेग क्यों ? तूफ़ानकी तरह मुझे क्यों उड़ा लाये ? इसका अन्त क्या होगा, सो भी सोचा है ?

रावण—हाँ, सोच लिया है ।—युद्ध,—रावणका संहार,—रामकी विजय।———जबसे तुम्हें देखा तभीसे परिताप पा रहा था। तभीसे तुमने मुझमें दुर्बलता उत्पन्न कर दी है । तभीसे मेरे जीवनका उत्साह, बल, सब कुछ गायब हो गया और जीवन ही तुम्हारी इच्छाके रूपमें बदल गया । तुम्हारी प्राप्तिके लिए मैं भीतर ही भीतर झुलस गया था।—तब, कल अपहरण करनेका साहस किया । राम यह नहीं समझ सकेंगे । समझें भी तो प्रजाके लिए,—तुम्हारे लिए, युद्ध करने आयेंगे । मैं अपने हृदय-दौर्बल्य और प्रेमके साथ मरूँगा। सीताके लिए रामके हाथसे मृत्यु,—बस मुझे यही चाहिए । अब भी मुझे समझ सको,—सीता, तुम्हारी दृष्टिसे दूर रहकर जीना कैसे ?— सीता, तुम्हारी आँखोंके सामने, तुम्हारे लिए जलकर भस्म हो जाऊँगा,—बस ।

सीता—भविष्यमें तुम्हारी कितनी बदनामी होगी, सो विचारा है ?

रावण—हाँ, सब सोच लिया है। मुझे मालूम है,—इतिहास-कार मुझे भयंकर क्रूर राक्षसके रूपमें चित्रित करेंगे। वे कहेंगे कि दुष्ट वृत्तिसे, नीच आकांक्षासे, उनकी दृष्टिमें 'पवित्र विवाह-बन्धन'की अवहेलना कर मैं तुम्हें उठा ले आया।—लेकिन, वे क्या जानेंगे कि तुम्हारे प्रथम दर्शनसे ही स्त्री-जातिने मेरी दृष्टिको कैसा विकसित कर दिया है।—वे अनन्त काल तक मुझे दूषणका पात्र बनाकर रखेंगे। मेरे विचारको नहीं समझेंगे।—क्या हुआ इससे ? इस तरह भी मेरा नाम सीता-रामके साथ गूँथा जायगा। जाने दो,—दुष्ट कहलाकर भी तो तुम लोगोंकी यशोवृद्धि करता हुआ तुम्हारी गाथामें स्थान पाऊँगा ! तुम्हारे नामके साथ मेरा नाम भी तो अनन्तकाल तक लोग गाते रहेंगे ! बस, मुझे उसीसे सन्तोष होगा। (दुःखसे) सीता, अब भी तुमने मेरा हृदय समझा ?

सीता—क्यों नहीं समझा ? आज ही क्यों, तुमको बराबर मैं ठीक ही समझती आ रही हूँ। परन्तु,—

रावण—सीता, प्रेम मुझे उन्मत्त बना रहा है।

सीता—लेकिन इतना साहस व्यर्थ——

रावण—सोचा, तुम्हारे बिना अब जी नहीं सकता। मृत्युने आकर्षित किया। इसीलिए आँखें मूँदकर साहस करके कूद पड़ा।

सीता—क्यों ?

रावण—क्या करूँ सीता ! मेरे अन्तरमें कैसी ज्वाला उठ रही है,—क्या उसका अनुमान नहीं कर सकती हो ?

(सीता सिर हिलाती है।)

रावण—सीता, मैं इस जीवनमें कितना जला हूँ, और इसकी शान्तिके वास्ते कितना व्याकुल हुआ हूँ! ओह! सीता, सारे विश्वका अन्वेषण किया।—परन्तु शीतलताका एक कण भी कहीं न मिला। असंख्य सौन्दर्य-प्रतिमाओंको अपने अधीन किया। पर, वे सब एक क्षण आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न करनेके सिवा और कुछ न कर सकीं। मेरा जीवन अन्धकारमय हो गया। फिर पश्चात्ताप हुआ कि क्यों यह कर्म किया, क्यों यह दुर्बलता प्रकट होने दी?—तभी मैंने समझ लिया कि मेरी वेदनाका शमन इस चमक-दमकसे न होगा।

सीता—रावण!

रावण—सीता, मेरे ऊपर तुम्हें करुणा नहीं उत्पन्न होती? कुछ कष्ट पहुँच रहा है मुझसे?——

सीता—(कष्टसे) नहीं, तुमने इतनी आतुरता क्यों दिखाई?

रावण—मैं यह वेदना न सह सका। तुम्हें पानेके लिए अपना जीवन, अपनी कीर्ति, अपना राज्य, अपना सर्वस्व, जूएपर लगा देनेकी इच्छा हो गई। सीता, मुझे कुछ भी नहीं माल्रूम पड़ता है। नहीं समझ पाता हूँ। एकदम अथाह ही अथाह मालूम पड़ता है।

सीता—इतनी दीनता क्यों?

रावण—सीता, अपना हृदय बन्द ही रखोगी? मुझे अपनाओगी नहीं?

सीता—रामको कितना कष्ट पहुँचेगा, तुमने सोचा है?

रावण—(बहुत कष्टके साथ) आह! क्या करूँ सीता, उस दिन पंचवटीमें तुम लोगोंको देखा। ओह! कितना आदर-सत्कार किया तुम लोगोंने।—तुम लोगोंके आतिथ्य, आनन्द और उस

अपूर्व प्रेमने मुझे कितना आकर्षित किया ? मनमें सोचा—बस, यह दर्शन ही काफी है। उस दिन मैंने तुम्हारे निर्मल-प्रेमका स्वरूप देखा। —उसी तसवीरको हृदयमें छिपाकर, मनोरथोंको तिलांजलि देकर, मैं लंका चला। मैंने जीवनके भविष्यकी ओर दृष्टि डाली तो एकदम शून्य-सा, निस्तेज-सा, अन्तहीन मार्ग-सा दिखाई पड़ा। सारे विश्वकी महत्ता आकर मेरे हृदयके उस चित्रमें समा गई। उसीका बार बार दर्शन कर जीवन बिता दूँ, यह निश्चय कर लंकाका रास्ता पकड़ा।

सीता—तब ?

रावण—तब, मेरी बहिन प्रसूना मिली। उसने मेरे हृदयके चित्रको निकाल कर फेंक दिया। मेरा मार्ग बदल दिया। उसने तुम्हारी बातें सुनी थीं। उसका कहना था कि तुम्हारे हृदयके अन्तर-प्रदेशमें मैं विराजमान हूँ। बस, मैं पूरा पूरा बदल गया। मुझमें स्वार्थका अंकुर पैदा हुआ। पुनः जीवनमें ज्वाला दिखाई पड़ने लगी। बस, मैं अपनेको न रोक सका। आँखें बन्द कर एक वेदनाके साथ निर्णय कर लिया,—जीऊँगा तो तुम्हारा होकर,—मरूँगा तो तुम्हारे लिए। अब भी अगर तुमने मुझे पूरा न समझा हो तो अब मैं आँधीके वेगसे अपना सर्वस्व प्रेम-देवताके चरणोंमें समर्पित कर 'सीता सीता' जपता हुआ भस्मीभूत हो जाऊँगा। क्या तब भी यह देवी उस राखमेंसे एक चुटकी लेकर अपने माथेमें न लगाएगी ?

सीता—(बहुत देर बाद) ओह, कितना साहसी है तुम्हारा हृदय !

(रावण आतुरतासे सीताकी आँखोंमें देखता है।)

सीता—(कुछ सोचती हुई) बेचारी तुम्हारी बहिनका उस दिन बड़ा अपमान हुआ !

राव०—सीता, इस प्रणय-जीवनमें मान-अपमान, हार-जीत कोई चीज नहीं।

सीता—रावण, इधर देखो। (रावणकी आँखोंमें देखती है। रावण उस दृष्टिसे उन्मत्त हो जाता है।) क्यों, मैंने तुम्हारा हृदय नहीं समझा ? तुम क्या समझते हो ? (रावण अनजान ही आगे बढ़ आता है।) प्रेमके वास्तविक स्वरूपको समझो। देखो, तुमको प्रेमने रास्ता दिखाया है। तुम धन्य हो।

राव०—(आतुर भावसे) सीता !

सीता—(धीरेसे) तुमने सत्य कहा है,—प्रेममें हार-जीत नहीं। प्रेम कष्ट-दायक है। प्रेम नटवर-मूर्ति है।

(निःश्वास लेती हुई गूढ़ दृष्टिसे देखती है।)

राव०—(दीर्घ साँस लेकर सिर झुकाता है। मानों हृदयके भीतरसे बोल रहा हो।) सीता, जबसे तुम्हारी यह आश्चर्यमयी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी तभीसे मेरा जीवन एक उन्मत्त वेदना-सा बन गया। अब कहीं कष्टमें निहित सुखको मैं समझ सका हूँ। सुखके सिवा और सब-कुछसे अपरिचित रावणने अब दुःखकी खोज करना सीख लिया है। दुःखके अन्तरकी गंभीरता और गहराईको आज तुम्हारे वर-स्वरूप पा रहा हूँ। सीता, आजका मेरा जीवन धन्य है। अब जीनेकी ज़रूरत नहीं। सीता, इस स्थितिके बाद जीवन नहीं चाहिए।

सीता—(कंपित स्वरसे अत्यंत करुणा-पूर्वक) रावण !

राव०—(सिर उठाकर देखता है। उसकी दृष्टि सीताकी आँखोंमें गड़-सी जाती है। उन्मत्तकी भाँति—) सीता, सीता, सीता !—

ये आँखें मेरी न होंगी तो मैं कैसे जीऊँगा ? सीता, ये आँखें सृष्टि-रहस्यका उद्घाटन करती हैं ।—आह, कैसा प्रकाश है ! यह कैसा प्रकाश है सीता ! यह सुधाकरकी शीतल रश्मि है अथवा हृदयको भस्म करनेवाली प्रणय-ज्वाला ? क्या है इस दृष्टिमें, अमृत या हालाहल ? सीता, मुझे अपने इच्छानुसार चलाओ । मैं तुम्हारा भृत्य हूँ ।

सीता—रावण, इन वासनापूरित आँखोंको खोलो । मुझे पूरी तरह समझो ।

रावण—सीता, मेरे हृदयमें एक परिवर्तन हो रहा है जो मेरी समझमें नहीं आता है । ओह, तुम्हारी आँखें ! रक्तिम ज्वालाभिभूत हो कितने प्रणय-संसार तुम्हारी इन आँखोंमें घूम रहे हैं ! कितनी अभिलाषाएँ दग्ध हो रही हैं उस ज्वाला-जालमें !——कैसा प्रणय-तांडव हो रहा है !——सीता, अब अपनेमें दग्ध हो जाने दो इस रावणको !——सीता, तुम्हारी आँखोंमेंसे मैं अपनी दृष्टि हटा भी नहीं सकता हूँ और उसमें विलीन भी नहीं कर—

(रावण अपनी आँखें हाथसे बँद करना चाहता है । सीता अपने हाथसे उसका हाथ रोक देती है । रावणके हाथ नीचे गिर जाते हैं ।)

सीता—रावण, व्याकुल मत होओ,—समझो,—सोचो । निर्मल मनसे, निश्चल दृष्टिसे, सत्यका अवगाहन करो ।

रावण—क्या सीता ?

सीता—स्त्री-हृदयके विश्व-प्रेमको स्वीकार कर सकते हो ?—कोई स्वीकार कर सकता है ?

रावण—क्या कहा ?

सीता—रावण, सृष्टिके इस रहस्यको यदि समझ सको तो शायद तुम्हारा यह दृष्टि-कोण बदल जाय।

रावण—(घबराहटके साथ) सीता, क्या मेरे लिए नया तेजो-मार्ग बना रही हो ? सीता, मुझे उस रास्ते चलाती हो ?—

सीता—(धीरतासे) रावण, शायद स्वार्थ-रहित प्रेम पुरुषोंकी कल्पनाके बाहरकी वस्तु है। इसीलिए पुरुषका हृदय कामना-रहित प्रेम करना नहीं जानता।—परन्तु, स्त्रीकी सृष्टि दूसरे तत्त्वोंसे हुई है। स्त्री उसी प्रेमको अधिक चाहती है जिसे वह दान करती है। स्वार्थपूर्ण प्रेम-वांछा उसके हृदयमें कम,—बहुत कम, रहती है। स्त्रीत्वका यह रहस्य ही शायद इस विचित्र विश्वका कारण है।——ऐसा कोई स्त्री-हृदय न होगा जो प्रेमीके प्रेमका आदर न करे। और इसी कारण वह प्रेमी-पुरुषके ईर्ष्याका कारण भी होता है। पुरुष स्त्रीके इस विश्व-दर्शनको,—विश्व-प्रेमको, नहीं सहन कर सकता। पर, इस विशालतामें वह संकीर्ण स्वार्थ निन्द्य ही होगा। (रावण पागलोंकी भाँति निःश्वास लेता हुआ सीताकी ओर देखता है।) रावण, सारी वासनाओंको तिलांजलि देकर इस प्रणय-संसारमें आ सकते हो ?———इस शरीर-सीमाको पार कर जानेवाले प्रेममें राम या रावण,—यह प्रश्न ही नहीं उठता। रावण, सुनो, समझो।

रावण—(कसकर आँखें मूँद लेता है) सीता, मेरे अभ्यन्तरका सब कुछ बदल रहा है।—ऐसा परिवर्तन हो रहा है जिसे मेरी बुद्धि नहीं ग्रहण कर रही है।

सीता—रावण, इधर देखो,—रावण !

रावण—सीता, तुम्हारी चुम्बक-सी दृष्टि मेरे हृदयमें,—सीता,

सीता !—तुम्हारी इच्छामें, तुम्हारी सृष्टिमें, दूसरा ही रावण तैयार हो रहा है।—इच्छा, सीता, तुम्हारी इच्छा——

सीता—इधर देखो रावण !

रावण—(पागलकी तरह) नहीं देख सकता सीता, नहीं देख सकता। तुम्हारी दृष्टिके आकर्षणसे इस शरीरको रोक भी नहीं सकता और उत्सर्ग भी नहीं कर सकता।

(सीता रावणके हाथ उसकी आँखोंपरसे हटाती है।)

रावण—(सिर झुकाते हुए आँखें खोलकर, पागलोंकी तरह ज़ोरसे—) सीता, तुम्हारा रावण—

(एक बार हिलकर सीताके हाथोंपर अपना सिर टेक देता है। साँस जोर-जोरसे चलने लगती है। उसका सिर सीताके हाथोंपरसे खिसककर पैरोंके पास गिरता है। सीता शान्तिपूर्वक उसका सिर अपनी जाँघपर रखती है।)

रावण—(कुछ देर बाद, मूर्छितावस्थामें ही) सीता !

(रावणकी आँखोंसे अश्रु-धारा चलती है। सीताकी आँखोंसे भी दो बूँदें रावणकी आँखोंपर गिर पड़ती हैं।)

रावण—(मूर्छितावस्थामें ही) सी....ता.... !

सीता—(मानों सारे विश्वका उच्छ्वास लेकर) रावण !

छठा दृश्य

[प्रातःकाल । हरे हरे तोरणों, पुष्प-मालाओं तथा धवल दीवारोंसे लंकापुरी मानो उत्सव मना रही है । सौधोंपर जयपताकाएँ अलस गतिसे लहरा रही हैं । जय-ध्वनि या शोर-गुल कहीं कुछ नहीं है । निःशब्द । नगरके बाहर रणक्षेत्रके समीपका स्थान । एकत्र लकड़ियोंसे दावाग्निकी तरह ज्वालाएँ निकल रही हैं । उस ज्वालासे कुछ दूरपर दीन व्याकुल राम । रामकी बाँई ओर अश्रु-पूरित लोचनों-वाले लक्ष्मण, उदास चेहरा लिये हनुमान । कोई कुछ नहीं बोलता । अग्निदेव तीव्र-रूप धारण किये अपनी ज्वालाएँ पसार रहे हैं । कुछ दूरपर लंकापुरवासी चित्रवत् खड़े तमाशा देख रहे हैं । अशोक-वनकी ओरसे सीता आती हुई दीख पड़ती है । सिर झुकाये विभीषण धीरे धीरे आगे चल रहे हैं,—मानों किसी भारसे भूमिमें धँसे जा रहे हों । सीताके मुँहमें एक अप्रतिम कान्ति,—जो सूर्य-चन्द्रमें भी नहीं दीखती, झलक रही है; उसकी आँखोंमें गंभीरता निर्मलता और शांति है, तथा पद-संचालनमें धैर्य-स्थैर्य । सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर मालूम होता है मानों वह भूतलको पवित्र करनेको अवतीर्ण हुई है । सीता अंचलको उँगलियोंसे ठीक करती हुई अग्निके पास रामसे कुछ दूर रुककर ज्वालाओंको देखती खड़ी होती है ।—कुछ देरतक भयंकर निस्तब्धता ।]

सीता—लक्ष्मण, मैं अपनी पवित्रताके प्रमाण-स्वरूप अग्नि-परीक्षा ही नहीं, कहो तो अग्निमें अपनेको होम भी दूँ ।

राम—(सिर झुकाकर) सीता, एकके बाद एक आनेवाली ये विपत्तियाँ मुझे कितना दुःख देती हैं, यह तुमसे छिपा नहीं है । तुम यह भी जानती हो कि कर्त्तव्य समझकर ही मैं रावण-संहारके लिए तैयार हुआ था ।—तुम्हारे रामके हृदयमें किसी तरहका अन्य नीच भाव न था । वह निर्मल था । जिस महत् आदर्शको प्रजाके हृदयमें बोनेका संकल्प उस दिन स्थिर किया था, उसी आदर्शके लिए रावण-संहार जैसी वेदना भी मुझे सहनी पड़ी,—सीता, और उसीके लिए यह--(रुद्धकंठसे) सीता !—

(सीता क्षणभर निश्चल तिरछी दृष्टिसे रामको देखती है ।)

राम—(धीरजके साथ) सीता, तुम्हारे रामके हृदयमें द्वेषके लिए, संशयके लिए, स्थान नहीं है, यह तुम जानती हो ।—

(सीता सिर हिलाती है ।)

राम—जनतामें जिस आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिए कल शामको रावणकी चितामें आग लगाई थी, उसी कार्यके निमित्त अभी—(गद्गद स्वरसे)—अभी, इन काष्ठोंको प्रज्वलित किया है । सीता, तुमसे पहले तुम्हारा राम अग्निमें प्रवेश करेगा । सीता, तुम्हारे साथ तुम्हारे रामकी भी परीक्षा हो रही है । तुम्हारे कष्टोंसे यह हृदय कितना दुःख पा रहा है ! रावणके अवसान-कालका यह वाक्य, 'राम, अब भी सीताको सुखी बनाओ' कभी न बुझनेवाली ज्वालाकी तरह मेरे हृदयको जला रहा है ।

सीता—रावणको समझ सके ?

राम—अच्छी तरह समझ लिया । त्यागमूर्ति वीर रावणको समझना कठिन नहीं है । अवसानकालमें, मूर्छितावस्थामें भी, 'सीता ! सीता !—प्रणय-तांडव' आदि चिल्लाता हुआ वह तुम्हारा नाम ही जपता रहा ।

सीता—होशमें आकर बोला था ?

राम—हाँ, कुछ होशमें आकर मुझसे उसने पूछा, 'राम, मुझसे द्वेष करते हो ? ईर्ष्या करते हो ?' मैंने कहा, 'रावण, न मेरे हृदयमें द्वेष ही था न विजयाकांक्षा ही थी ।—यह सब होनहार था ।'

(राम सिर उठाकर सीताको देखते हैं, सीता स्वीकार-भावसे सिर हिलाती है ।)

राम—अपना राज्य, अपनी कीर्ति, और खुद अपनेको तुम्हारे लिए,—प्रेमादर्शके लिए, उत्सर्ग कर देना ही अपना आदर्श,—अपनी

विजय, बतलाता हुआ (सीता निःश्वास लेती है) मेरी जाँघपर रखे हुए अपने सिरको यत्नपूर्वक हिलाकर, अपने हाथ मेरे गलेमें डालकर, 'राम ! विजय किसकी ? तुम्हारी या मेरी ? नहीं, यह प्रेमकी विजय है।—मैं पराजित होकर नहीं मर रहा हूँ। विजयी होकर मुक्ति लाभ कर रहा हूँ। प्रेम जीत रहा है और प्रेमके अन्दर मैं विजयी हो रहा हूँ। अ-शोक, आनन्द, सीता ! सीता !'—कहता हुआ, तुम्हारा नाम जपता हुआ, स्वर्ग सिधारा। अन्तिम समयमें अपना हृदय खोलकर दिखाया और मेरा हृदय टूक टूक करते हुए (सिर झुकाकर) बहुत दीनतासे प्रार्थना की, 'राम, सीताको अब भी सुखी बनाओ। प्रजा निन्दारोपण करेगी, उसको ध्यानमें मत लाना।' मैं भीतर ही भीतर दुःखके आँसुओंसे भीग गया। कितना आदर्श प्रेमी था! अब भी इस ज्वालाको देखकर अश्रुपूरित नयनोंसे रावणकी चिता मेरे हृदयको जलाती हुई मानों धिक्कार-पूर्वक कह रही है, 'राम, क्या अब भी सीताको सुख न दोगे ?'—सीता, रावण यदि जीवित होता ! और नहीं कुछ, तो, इस ज्वालाको अपने आँसुओंसे ही बुझाता। (सिर उठाकर) जीता होता तो इस अग्नि-परीक्षासे बहुत दुःखी होता।

सीता—(सिर झुकाकर) हाँ, बहुत दुःखी होता।

(सीता अग्निमें प्रवेश करती है। अग्निदेव अपनी सहस्र भुजाओंको फैला देते हैं,—सीताको जलानेके लिए नहीं, बल्कि उस दुष्प्राप्य गौरवका आह्वान करते हुए जो अभी उन्हें मिल रहा है।)

(पर्दा—धीरेसे)

समाप्त

कैफियत

रामायणको केवल पूजाकी वस्तु मानकर पढ़नेकी जरूरत भी नहीं समझनेवालों और उसे भी देव-मूर्तिके साथ रखकर चन्दन-फूल चढ़ाकर मोक्षकी आशा रखनेवालोंसे मैं कुछ न कहूँगा। मेरा यह प्रयास केवल उन सज्जनोंके लिए है जो 'पतिव्रता सीता' और 'राम-राज्य'को अपना लक्ष्य बनाकर उन्हीं आदर्शोंकी लीकपर अपने दैनिक जीवनकी गाड़ी खींचनेकी इच्छा रखते हैं और सीता-रामके जीवनको अर्थयुक्त समझते हैं। वे पूछ सकते हैं कि (१) वाल्मीकिकी अद्भुत रचनामें यह इच्छानुसार परिवर्तन क्यों किया गया ? (२) सीता-रामके चरित्रका,—जो उत्कृष्ट और दृढ़ आदर्शके रूपमें समाजमें प्रचलित है, नया अर्थ कल्पित करके सम्पूर्ण विश्वासके साथ एक आदर्शके पीछे चलनेवाली जातिके हृदयमें व्यर्थ आंदोलन पैदा करना कहाँ तक उचित है ? और (३) हृदय चाहे जितना भी सहानुभूति-पूर्ण हो, फिर भी प्रेम करनेवाले पर-पुरुषके प्रति प्रेम दिखाना, उसका सिर अपनी जाँघपर रख लेना, आदि बातें क्या सीताके पातिव्रत्यपर कलंक आरोपित करना नहीं है ?

पहले आक्षेपका उत्तर यह है कि कवि निरंकुश होता है। वह मूल कथाका अनुसरण करते हुए कथाकी नवीन उपयोगिता दिखाने तथा उसका नये सिरेसे अर्थ लगानेमें पूर्ण स्वतंत्र है। निस्सन्देह वाल्मीकि महाकवि थे। उनकी काव्य-कला उत्कृष्ट थी। पर इतनेसे ही उनकी रचनाकी समीक्षा करना या उनकी सृष्टिसे भिन्न प्रयत्न करना अपराध नहीं हो सकता। अपने समयमें आदर्श समझे जानेवाले भावोंका कथामें समावेश करने तथा कथाके पात्रोंका चरित्र आदर्श-प्राय बनानेका वाल्मीकिको जितना अधिकार था उतना ही हरएक कविको है।

रामायणके आसेतु-हिमाचल प्रचार और आदर पानेमें उसके काव्य, धर्म,

कथा, इतिहास आदिके सिवा और भी दो बातोंने योग दिया है । पहले मैं उन्हीं दो बातोंकी समीक्षा करूँगा ।

अ—एक तो लोगोंका यह समझना कि सुंदर-कांडमें मोक्ष-साधक बीजाक्षर हैं—

इस बातको माननेवाले यदि रामायणकी कला और कविताको छोड़ दें तथा सुंदर-कांडकी गणना मंत्र-शास्त्रमें करने लगें, तब तो एक बात भी हो । लेकिन, सिर्फ इसीलिए रामायणको यह गौरव नहीं मिल सकता जिसे आज वह प्राप्त कर रही है ।

आ—यह धारणा कि रामके पैदा होनेके पूर्व ही वाल्मीकिने रामायण तैयार की—

जिन व्यक्तियोंने यह समझकर कि ऐसा करनेसे आदि-कविकी इज्जत बढ़ेगी—उनके सिर यह अपवाद लगाया है, मेरी समझमें उन्हींके माथे इस कलंकको मढ़ देना वाल्मीकिके साथ न्याय करना होगा । क्यों कि, एक खास उद्देश्यसे लिखे जानेपर भी रामायण-प्रतिपादित उन्नतादर्श, धर्माधर्म-निर्णय, अद्भुत कल्पना, मधुर कविता, कथा-प्रतिपादन-शैली आदिको देखकर वाल्मीकिकी अद्भुत मेधाशक्तिका पता लगता है । यदि रामसे पहले ही यह कथा कल्पित की गई होती तो वाल्मीकि जैसा कलाविद् और मेधावी कवि अपनी रचनामें त्रुटि क्यों रहने देता ?

वाल्मीकिके गौरवके प्रश्नको छोड़ देनेपर भी ऊपरकी बातपर विचार करते समय प्रसंगवश एक घटना याद आ जाती है । इँग्लैंडके एक लेखकने एक उपन्यास लिखा और कुछ दिन बाद वह एक फ्रेंच महिलाके हाथ-में पड़ा । उसको उपन्यासके प्रत्येक पृष्ठमें अपना ही जीवन अंकित दिखाई पड़ने लगा । उक्त महिलाकी उस समयकी स्थितितक उपन्यास अक्षरशः मिलता गया । बाकी भाग भी वह बड़ी आतुरतासे पढ़ गई । उस दिनसे उस स्त्रीका जीवन उसी उपन्यासकी तरह चलने लगा और उस विषादान्त उपन्यासकी तरह ही उसका जीवन विषादान्त हुआ । मरनेके समय उसने कहा कि उक्त उपन्यास ही मेरे इस तरहके अन्तका कारण हुआ ।

रामायणकी रचना भी यदि रामसे पहलेकी मानी जाय, तो कहना पड़ेगा कि उस फ्रेंच युवतीकी तरह कमज़ोर दिमागवाले एक राजकुमारने वाल्मीकीय रामा-

यण पढ़ी और वह वैसा ही हो गया। पर रामकी इज्जत करनेवाले इसे कभी पसन्द न करेंगे।

इसलिए वाल्मीकि रामायणके ही कुछ भागोंके आधारपर मूढ़ विश्वासोंको एक ओर रखकर विवेकके साथ पक्षपात-हीन तर्क करनेपर हम इन निर्णयोंपर पहुँचते हैं—

'जैसा कि लोग समझते हैं, रावण दुष्ट राक्षस नहीं था, वह बड़ा सज्जन और भला था।' इसपर प्रश्न उठता है कि यदि ऐसी बात थी तो उसने पर-दारा सीताका अपहरण क्यों किया ? उत्तरमें कहा जा सकता है कि राक्षस-धर्मके अनुसार उसका यह कार्य उचित था। रावण ही सीतासे कहता है—

स्वधर्मो रक्षसां भीरु, सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां, हरणं संप्रमथ्य वा ॥

—सुन्दर-कांड, सर्ग २०

अर्थात् हे भीरु, पर-स्त्री-गमन और बलपूर्वक पर-स्त्री-हरण राक्षसोंका सदाका स्वधर्म है, इसमें सन्देह नहीं।

इसको ध्यानमें रखकर ही न्याय-विचार करना होगा। आजकल सामाजिक नियमोंके अनुसार उस कालका विचार करना असंगत है। आजकलके 'पिनल-कोड'के अनुसार विचार किया जाय तो नाबालिग़ लड़कीको उसके पिताके अधिकारसे उड़ा लानेके अपराधमें भगवान श्रीकृष्णको, दफ़ा ३६के अनु-सार, सात वर्षकी सजा भुगतनी पड़ेगी। इसी तरह, अपनी प्रेमिका बालिकाको उसके घरसे उड़ा लानेवाला कोई व्यक्ति अपनी सफाईमें यदि रुक्मिणी-हरणकी चर्चा करे, तो जज अवश्य ही हँसेगा। आजकलकी दृष्टिसे विचारा जाय तो कुंती, द्रौपदी आदिका पतिव्रत, तथा महाभारतके बहुतसे महापुरुषोंका जन्म भी, आदरास्पद या आदर्श नहीं होगा। इसलिए जिस समाजकी हमें समीक्षा करनी है, उस समाजके प्रचलित धर्मों और नियमोंको ध्यानमें रखकर ही वैसा करना उचित होगा। इस नीतिका अवलंबन कर अब मैं रावणके कार्योंकी आलो-चना करूँगा।

सीताकी आँखें उन्मादक थीं। रावण सीताके प्रेममें उन्मत था। अपनी प्रेमिकाको किसी तरह भी प्राप्त करना राक्षसोंकी दृष्टिमें पाप न था। इसलिए, उसने सीताका अपहरण किया। उसमें नीच कामना न थी। क्यों कि, यदि

उसे सीतासे प्रेम न होता, सीताको वह गौरवकी दृष्टिसे न देखता होता, तो, जब सीता लंकामें निस्सहायावस्थामें उसके अधीन थी तब, वह उसकी इज्जत कदापि न करता, सीताकी सब तरहसे रक्षा न करता तथा सीताके मिलनेपर किसी तरहकी जबर्दस्ती किये बिना भी न रहता। इन बातोंका प्रमाण वाल्मीकि रामायणके सुंदरकांडका बीसवाँ सर्ग है। अशोक-वनमें वह सीतासे कहता है— 'कामये त्वां विशालाक्षि—' हे विशाल नेत्रोंवाली, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। अपने अधीन रहने पर भी, प्रेमसे दग्ध होते हुए भी, वह कोई अत्याचार नहीं करता है। देखिए—

एवं चैतदकामां तु न त्वां स्पृश्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ ६

—सुन्दरकाण्ड, सर्ग २०

अर्थात् हे मैथिलि, मेरे शरीरमें कामदेव भले ही इच्छानुसार संचार करे, पर इच्छारहित तुम्हारे शरीरका मैं स्पर्श भी न करूँगा। कितना न्याय-संगत बर्ताव है! इतना ही नहीं, वह केवल शरीर-सुखकी पूर्त्ति ही नहीं चाहता था। बल्कि वह प्रार्थना करता था "भव मैथिलि भार्या मे"—सीता, तुम मेरी पत्नी बनो। इसपर भी यदि पाठक समझें कि सीताको धोखा देनेके वास्ते ऐसा कहा होगा, तो मैं और एक जगहसे रावणके विचार उद्धृत करूँगा।

राम जब वानर-सेनाके साथ युद्धके वास्ते तैयार हुए तब रावणने अपने मंत्रियों तथा बंधु-मित्रोंकी एक सभा की और उनसे पूछा, "मैंने अपने स्वार्थके लिए सीताका अपहरण किया। उसका पति अभी युद्धके लिए आया है। इस युद्धमें मेरा ही नहीं बल्कि आप लोगोंका भी नुकसान होगा; अतः आप लोग अपना अभिमत प्रकट कीजिए।"

सा मे न शय्यामारोढुमिच्छत्यलसगामिनी।
त्रिषु लोकेषु चान्या मे न सीता सदृशी मता ॥ १३ ॥
उन्नासं वदनं वल्गु विपुलं चारुलोचनम्।
पश्यंस्तदाऽवशस्तस्याः कामस्य वशमेयिवान् ॥ १७ ॥
क्रोधहर्षसमानेन दुर्वर्णकरणेन च।
शोकसंतापनित्येन कामेन कलुषीकृतः ॥ १८ ॥

सा तु संवत्सरं कालं मामयाचत भामिनी ।
प्रतीक्षमाणा भर्तारं राममायतलोचना ॥ १९ ॥
तन्मया चारुनेत्रायाः प्रतिज्ञातं वचः शुभम् ।
श्रान्तोऽहं सततं कामाद्यातो हय इवाध्वनि ॥ २० ॥
किं करिष्यामि भद्रः वः किं वा युक्तमनन्तरम् ।
उच्यतां कस्समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत् ॥

—युद्धकांड, सर्ग १२

अर्थात् उस अलसगामिनी सीताने मेरी सेजपर आनेसे इनकार किया है। मेरी दृष्टिमें तीनों लोकोंमें सीता जैसी दूसरी कोई स्त्री नहीं है। ऊँची नाक, तथा विशाल नेत्रोंवाली उस सीताका मनोहर मुख देखकर मैं कामाधीन हो जाता हूँ। क्रोध और आनन्दमें समान विवर्णता लानेवाले तथा दुस्सह शोक देनेवाले कामने मुझे कलुषित कर दिया है। उस विशालाक्षिने अपने भर्ता रामकी प्रतीक्षाके लिए एक सालका समय माँगा है। उस सुंदर नेत्रवाली सीताका वह प्रतिज्ञा-वाक्य सुनकर सतत कामाघातसे मैं ऐसा श्रान्त हो गया हूँ जैसे बहुत दूरसे दौड़ा आया हुआ अश्व ! अब (सब हालत जानकर) जो युक्त हो, शुभ हो, उचित और सुकृत हो,—वह कहिए। मैं वही करूँगा।

इस तरह रावणने बिना किसी दुरावके साफ साफ उनकी सलाह ली। सीताके सामने कही गई बातें यदि धोखेके लिए कही गई थीं, तो पुनः उन्हीं बातोंको अपने अंतरंग व्यक्तियोंके सामने सरल भावसे कहनेकी आवश्यकता नहीं दीख पड़ती। अतः इन सब बातोंका विचारकर कोई भी सहृदय व्यक्ति यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि रावण सीतासे सच्चा प्रेम करता था और उसके बिना दुःखी था।

भोजके 'शृंगार-प्रकाश' में रावणके बारेमें यों लिखा है—

आज्ञा शक्रशिखामणि-प्रणयिनी, शास्त्राणि चक्षुर्नवं,
भक्तिर्भूतपतौ पिनाकिनि पदं लंकेति दिव्या पुरी ।

उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरो लभ्यते ।
साक्षादेष न रावणः क्व नु पुनस्सर्वत्र सर्वे गुणाः ॥

अर्थात् जिसकी आज्ञा इन्द्रके शिरोमणिकी प्रणयिनी है,—अर्थात् जिसकी आज्ञा इन्द्र शिरोधार्य करता है, शास्त्र ही जिसकी आँखें हैं, जो पिनाकी भूत-पतिकी भक्तिसे पूजा करता है, जो ब्रह्माके कुलमें उत्पन्न हुआ है,—वैसा यह रावण ही यदि वर न हो सकेगा तो ऐसा वर और कहाँ मिलेगा ?—सब कहीं गुण ही गुण नहीं रहते ।

इससे भी हम देखते हैं कि 'रावण'का नाम ही अकीर्तिकर हो गया है, वह गुणहीन न था ।

इस नामकी पैदाइशका इतिहास भी हम ढूँढ़ें । ' राव ' का अर्थ है, शोर या रुदन । ' राव ' करानेवाला ' रावण ' यह अर्थ स्पष्ट है । यह नाम उसे खिताबके रूपमें बड़प्पनके लिए ही मिला होगा । शत्रुओंमें शोर-गुल– ' हाहाकार ' उत्पन्न करता था, इसलिए ' रावण ' नाम उपयुक्त ही है । अगर यह दूषण हो, तो इसमें (शत्रुओंमें हाहाकार उत्पन्न करानेमें) राम ही क्या कम थे ? रामने भी राक्षस-कुलमें ' राव ' भर दिया था, इसलिए वह भी 'रावण' ही हुए । अतएव ऊपरकी बात ही सच्ची है कि रावण शत्रुओंमें हाहाकार उत्पन्न कराता था । इसका प्रमाण सुन्दरकाण्डमें है—' इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणश्शत्रुरावणः,'—यहाँ स्वयं वाल्मीकिने 'शत्रु-रावण' रावण कहा है । तो फिर आज इस शब्दका ऐसा बुरा अर्थ कैसे प्रचलित हुआ ? रामके दिग्विजयका गान करते हुए उसके विरोधीको लोक-कंटक और संहार-योग्य साबित करनेके लिए रावण शब्दका बुरे अर्थमें प्रयोग एक कवि-कौशल ही है । जैसे कोई समाज-सुधारक किसी स्त्रीके बारेमें कहे कि ' इन्होंने विधवा-विवाह किया है ', तो उसके कहनेका तात्पर्य यही होगा कि अमुक स्त्रीने समाजके अत्याचारोंके विरुद्ध खड़ी होकर कुमार्गमें जानेके बदले दूसरा विवाह किया है । लेकिन कोई सनातनी कहे कि इस स्त्रीने विधवा-विवाह किया है, तो उसमें व्यंगकी ध्वनि आयगी कि यह दूसरे पुरुषको स्वीकार कर धर्मभ्रष्टा हुई है । उद्देश्यके अनुकूल एक ही शब्द भिन्न भिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त हो सकता है । बस, यही हालत 'रावण' शब्दकी हुई है ।

लगे हाथ 'राक्षस' शब्दकी भी परीक्षा हो जानी चाहिए। असल शब्द है—'रक्षस्' अर्थात् रक्षा करनेवाला। इसका प्रमाण—

रक्षाम इति यैरुक्तं रक्षसास्ते भवंतु वः।
यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवंतु वः॥

सृष्टिके आदिमें जिन्होंने रक्षाका व्रत लिया वे 'रक्षस्' कहलाये। अमरने भी राक्षसोंको देवयोनिमें ही गिनाया है—

विद्याधरोऽप्सरो यक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥ ११

'असुर' शब्द भी ऐसा ही है। ऋग्वेदके दशम मंडलमें कुछ असुर-प्रोक्त सूक्त भी हैं। यह सब देखकर विचारनेसे पता चलता है कि रावण शब्दकी तरह असुर, राक्षस आदि शब्द भी भयंकरता, क्रूरता आदि गुणोंके साथ प्रयुक्त होते होते इस हद तक पहुँच गये हैं।

फिर वाल्मीकिने रावणको ऐसा दुष्ट क्यों वर्णित किया? यह स्पष्ट है। रामकी कथाको रामायणका रूप देनेकी जो आवश्यकता हुई, वही आवश्यकता रावणको इस तरह चित्रित करनेकी भी हुई होगी। इस बातको अन्तमें मैं विशदरूपसे साबित करूँगा। उस समयके आर्य-अनार्य संघर्षमें आर्य लोगोंद्वारा किये गये कार्योंका समर्थन भी एक उद्देश्य रहा होगा। इसकी भी सत्यताका हम विवेचन करें।

इस देशका भाग्य न मालूम कैसा है कि आजतक जितनी जातियाँ बाहरसे आईं सबोंसे यह पराजित हुआ,—कभी अपनी स्वाधीनताकी रक्षा न कर सका। दो सौ वर्ष पहले गोरी जातियोंके हाथ और हज़ार वर्ष पहले गज़नीसे लेकर बाबरतक अन्य मुसलमान शासकोंके हाथ अपनी स्वाधीनता अर्पित कर देना ही इसका प्रमाण है। इतिहासपर विश्वास न रखनेवाला कोई सनातनी भी मूर्खता-पूर्वक, आँखें बन्द कर इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकता और न तर्कसे किसीके हृदयमें यह बैठा सकता है कि आज विदेशियोंका शासन हमारे कलेजेपर कोदों नहीं दल रहा है,—अथवा किसी भी आत्माभिमानी देशभक्तके लिए यह सह्य हो सकता है। इसी तरहका था उस समयका आर्य-अनार्य-संघर्ष।

" द्वयोह प्राजापत्याः देवाश्चासुराश्च, ततः कनीयसा एव देवाः ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त। "

अर्थात् प्रजापतिकी दो संतान हैं—देवता और असुर। देवताओंकी संख्या कम है,—असुरोंकी अधिक। विश्वको अधिकृत करनेके लिए इनमें स्पर्धा चल रही है। यह बृहदारण्यक उपनिषत्के तीसरे ब्राह्मणका पहला सूक्त है।

दशरथके समयतक गंगाके दक्षिणी किनारेसे दुर्गम दण्डकारण्य प्रारंभ होता था। आर्योंने सिंधु और गंगाके किनारोंके स्थानोंको ही अधिकृत किया था। दण्डकारण्यको पार करनेवाले प्रथम व्यक्ति राम ही हैं। अन्य जंगली जातियोंकी तरह आसानीसे वशमें न आनेवाली तथा आर्य-धर्मका खंडन करनेवाली,—यही नहीं, बल्कि जोर-शोरसे आर्योंसे टक्कर लेनेवाली, युद्ध-निपुण रावणकी जातिको हराकर वश करनेवाले रामकी तत्कालीन आर्य-संसारने कितनी प्रशंसा की होगी? रामकी कीर्तिको स्थायी रूप देकर अपनी आर्य प्रतिभा और शूरताको स्थायी रूप देनेके लिए उस समयके लोगोंने बहुतसे स्मारक निर्मित किये होंगे। नहीं तो, इस मामूली कार्यके लिए रामका इतनी प्रशंसा प्राप्त करना तथा नायकमें अनेक त्रुटियोंके होते हुए भी रामायणका आसेतु-हिमाचल इतना पवित्र माना जाना क्यों कर होता?

रामायण-कालमें आरंभ किया गया वह दिग्विजय महाभारत-कालमें दूसरे रूपमें ही दिखाई दिया। जिस तरह अकबरके समयमें मुगलों और राजपूतोंमें शादी-ब्याह होने लगा था, उसी तरह महाभारत-कालमें आर्य और इस देशके वासियोंमें भी शादी-ब्याह होने लगा। लोग विरोध-भाव भूलकर 'एक' जातिके रूपमें तैयार हो गये। क्रमशः आर्योंने भी इस देशवालोंके धर्म, आचार-विचार, नीति आदिका थोड़ा थोड़ा अनुसरण शुरू किया। इसीलिए तो श्रीकृष्णका रुक्मिणीसे, भीमका हिडिम्बासे और अर्जुनका सुभद्रा तथा उलूपीसे आसुरी विवाह आर्योंको स्वीकृत हुआ।

इस तरह अनार्योंसे मिलते हुए भी सारी अनार्य जातियोंको आर्य-सभ्यताके नीचे संगठित करना तथा 'आर्य' शब्दमें सर्व शिष्टता, मर्यादा आदिका समावेश करना जारी रहा।

आज जिस तरह गोरी जातिके मिश्रणसे पैदा हुए 'ऐंग्लो इंडियन' अपनेको गोरी जातिकी संतान कहकर गर्वका अनुभव करते हैं उसी तरह आर्य—

अनार्यसे पैदा हुई जातिने भी अपनेको 'आर्य' कहनेमें अपना गौरव समझा। इस तरह सारा भारतवर्ष आर्य-मय हो गया। क्रमशः आर्यों द्वारा किये गये सब अच्छे-बुरे कार्योंका समर्थन हुआ और अनार्योंके आत्म-रक्षाके प्रयत्न और आत्माभिमान आदि गुण 'राक्षसत्व' और 'अत्याचार'के नामसे अभिहित हुए। अन्तमें, 'आर्य' शब्द सब सद्गुणोंसे पूर्ण और 'अनार्य' शब्द उसके विपरीत सब दुर्गुणोंकी खान होकर प्रचलित हो गया। आज भी गोरी जातियाँ 'नीग्रो' जातिको 'निगर' Nigger कह कर पुकारती हैं। Nigger का मतलब काला ही नहीं वरन् नीच और घृणित भी है। 'अनार्य' शब्द भी ऐसा ही हुआ।

इस आर्य-अनार्य शब्दका विरोध कहाँ तक विश्वसनीय है, इसके लिए मैं आजकलकी एक प्रचलित बात पेश करता हूँ। गोरी जातिने काली या रंगीन (Coloured) जातियोंका बहुत भाग अपने वशमें किया है। उनके उस कार्यपर कोई दोषारोपण न करे, इसलिए काली जातिकी सभ्यता और धर्मको घृणित, नीच, जंगली कहकर प्रचार किया जा रहा है।

मान लें कि गोरी जातियोंका प्रयत्न सफल होगा। तब मिस मेयोद्वारा भारत और फिलीपाइनके बारेमें, तथा अमरीका-आफ्रिकानिवासी गोरी जातियों-द्वारा नीग्रो जातिके बारेमें, लिखी गई बातें स्थिर होकर, रामायणमें वर्णित अनार्य धर्म और आचारकी तरह, भारतीय सभ्यता भी नीच समझी जाने लगेगी। उस समय काली (रंगीन) जातियाँ निश्चय ही असुरों और राक्षसोंकी तरह संसारका कंटक होकर, नीच होकर, नाशकी अधिकारिणी होंगी। गोरी जातियोंद्वारा किये गये अत्याचार और बलात्कार विश्व-कल्याणार्थ समझे जाने लगेंगे।

वाल्मीकि यदि आर्य-अनार्य किसी पक्षके न होते, तो रावणका असली नाम क्यों न लिखते? कोई कितना भी अत्याचारी या दुष्ट हो पर वह अपना उतना विकृत नाम नहीं चुन सकता। भला राक्षस-स्त्रियोंके नाम तो देखिए,—दुर्मुखी, विकटा, चंडोदरी, अजामुखी, इत्यादि। यदि कहा जाय कि उन लोगोंके प्रति घृणा उत्पन्न करनेके लिए कविने वैसे वैसे नामोंकी कल्पना की है, तो सत्यसे दूर न होगा। ठीक इसी तरह रूस-जापान युद्धके समय रूसवाले जापानियोंको 'बनर-मुँहा' (Monkey Faced) कहते थे।

इन सबके अलावा और भी एक रहस्य है। वाल्मीकिका समय ई० पू०

२२८०, अर्थात् आजसे ४२१४ वर्ष पहले माना जाता है। वाल्मीकिने वेदोंमें व्यवहृत छन्द-नियमका व्यवहार किया और अनुष्टुप् छन्दोंका उपयोग कर कवितामें नया मार्ग प्रशस्त किया। आज भी कविता-क्षेत्रमें रामायणको जो स्थान प्राप्त है वह महाभारतको नहीं। रामायणकी इतनी प्रख्यात शैली और कल्पना-धारा ही अब तक सब देशकी सब भाषाओंका आदर्श रही। उस समयकी काव्य-कलामें प्रधान स्थान मिला है उत्प्रेक्षाको। इसलिए, राईको पर्वत और पर्वतको राई करने तथा चरित्र-नायककी प्रशंसाके लिए शत्रुको राक्षस, लोक-कंटक आदि कहकर नाना तरहसे दूषित करनेकी प्रथा भी चल पड़ी। यह बात सिर्फ वाल्मीकिकी रचनामें ही नहीं, वरन् ३१२० वर्ष पूर्व ग्रीस देशके कवि होमर-की रचना 'ईलियड' 'आडेसी' 'बेट्रकोमिया मेकिया' आदि ग्रन्थोंमें भी पाई जाती है। बहुतसे देशोंको जीतकर राज्य करनेवाले वीरकी कथा 'आडेसी' रामायणकी तरह ही है। उसमें वर्णित नायक-नायिका भी मामूली मनुष्यकी तरह नहीं वरन् दैवी पुरुषकी तरह मालूम पड़ते हैं। आजकल हमारे पंडित लोग जिस तरह वाल्मीकि कंठाग्र करते हैं, उसी तरह बहुत काल पूर्व ग्रीकके पंडित भी होमरकी रचनाएँ कंठाग्र करते थे। ग्रीक भाषा प्रायः होमरके काव्यों-की पुत्री ही कही जाती है। होमरका वर्णन, उसकी कथा-वस्तु, उसकी शैली हम लोगोंके पुराणोंकी तरह ही है। उस समयका भाव-जगत् वैसा ही था। उस समय वैसी रचना ही आनन्ददायिनी होती थी। उस कालकी वही श्रेष्ठ कला थी।

यही नहीं, मनुके समयमें भी राजाको लोग विष्णुका अंश मानते थे—'ना विष्णुः पृथ्वीपतिः'। जब मामूली राजा ही विष्णु हुआ तो सारे संसारका उद्धार करनेवाले अवतारी राजाको साक्षात् विष्णु कहना कौन-सी आश्चर्यकी बात है! फिर वैसे राजाके विरुद्ध खड़ा होनेवालेका राक्षस, लोक-कंटक, शांति भंग करनेवाले (Dangerous to Public tranquillity) के रूपमें बदल जाना स्वाभाविक ही है।

वाल्मीकिसे प्रारंभ होकर पुराणोंतक जो विस्तृत साहित्य-रचना हुई, उसका संक्षिप्त तात्पर्य इस तरह होगा—

इन राक्षसोंके अत्याचारोंसे चौदहों लोक हाहाकार कर उठते, सातों समुद्र घूर्णित हो जाते, पतिव्रताएँ आर्तनाद कर उठतीं, तपस्यामें विघ्न पड़नेके कारण ऋषि-मुनि ब्रह्मासे प्रार्थना करते, वह पुराणपुरुष विष्णुसे फर्याद करता,—

तब क्षीर-सागरमें लक्ष्मीके साथ योग-निद्रामें मग्न महाविष्णु शेष-शय्या त्याग कर शंख-चक्रादि धारण कर आगे आगे चलते, उनके पीछे शेष भगवान् और फिर लक्ष्मी आतीं। सब, भूलोकमें अवतार धारण करते, और अनेक बहाने बनाकर उन अत्याचारियोंका नाश करके पतिव्रताओंका पातिव्रत्य, ऋषि-मुनियोंकी तपस्या यज्ञ-यागादि सुरक्षित करते, संसारका उद्धार कर अवतार-कार्य पूरा होनेपर फिर योग-निद्रामें प्रविष्ट होनेके लिए क्षीर-सागरकी यात्रा करते।

यही कथा-विस्तारका ढंग था। यही कला थी। किसी भी पुराणको उठाइए; बस, यही सिर दर्द करनेवाला ढंग शुरू होगा। इस विधानकी सामग्रियोंमें एक रावण भी था, इसलिए वह राक्षस और लोक-कंटक हुआ। इन सब बातोंपर निष्पक्ष भावसे विचार करना ही न्याय होगा। मेरे ऐसे निर्णयका मुख्य कारण यही है।

अब मैं दूसरे आक्षेपका उत्तर दूँगा।

आजकल राम-राज्यका अर्थ होता है जिस राज्यमें किसी तरहका अन्याय न होता हो, नीति और धर्मका पालन होता हो। लोगोंकी धारणा है कि रामका शासन सब तरहसे सर्वदाके लिए आदर्श था। यह धारणा कहाँतक सत्य है, इसकी परीक्षा मैं रामायणके आधारपर ही करूँगा।

दस अपराधी भी विना दण्डके छूट जायँ तो छूट जायँ; पर, एक भी निर्दोषी दण्ड न पावे—यह कानूनका पहला-सूत्र है। इसे आजका कानून (Law) भी स्वीकार करता है। फिर संसारसे कोई सम्बन्ध न रखनेवाले शंबूकको मारना, जो निरपराधी था और कहीं जंगलके कोनेमें मुक्तिके वास्ते तपस्या कर रहा था, कहाँका न्याय है? किसी कारणसे ब्राह्मणके बालकके मर जानेपर उसका कारण शंबूककी तपस्या बताना, 'तपस्याका अधिकार ब्राह्मणोंके सिवा दूसरेको नहीं है' ऐसा समझनेवाले अहंकारी ब्राह्मणोंके लिए स्वाभाविक ही था। लेकिन, उन घमंडी ब्राह्मणोंकी प्रशंसा प्राप्त करनेकी आकांक्षासे उस निरपराधी, तपस्वी, सरल शूद्रराजकी हत्या करना कहाँका न्याय है? अपनी मुक्तिके वास्ते किसी कोनेमें बैठकर तपस्या करनेको अपराध बताना क्या जरा भी औचित्यकी सीमाके भीतर आ सकता है? फिर तत्कालीन प्रशंसा प्राप्त करनेके लिए निन्दनीय हत्या करनेवाले राम निष्कलंक आदर्श पुरुष कैसे हुए?

एक धोबीने गुस्सेमें आकर गालियाँ देते हुए अपनी पत्नीकी तुलना सीतासे

की—बस, इसी छोटे-से अपराधके लिए रामने उस महापतिव्रता, पूर्णगर्भिणी सीताको,—जिसने उनके साथ अनेक यातनायें झेली थीं,—अनेक विपत्तियाँ सहीं थीं,—जो अपनी आत्माको ही राममय समझकर जीती रही,—क्रूरताके साथ निस्सहायावस्थामें वन भेज दिया। 'उत्तर-रामचरित'में भवभूतिने इसी अवसरपर वासन्तीके मुँहसे रामको खरी-खोटी सुनवाई हैं। "ऐ निर्दयी, बारबार यशके लिए ही हाय हाय करते हो; पर, इससे बढ़कर अपयश क्या होगा?" एक धोबीके मुँहसे भी अपनी अकीर्ति न सुननी पड़े, इस हीन आकांक्षाके वशवर्ती होकर रामने ऐसा क्रूर नीच घृणित कार्य किया। एक धोबीका 'वोट' भी सुरक्षित रखनेवाले राम क्या आजकलके लोकल बोर्डों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंके चेयर-मैनोंसे श्रेष्ठ थे?

विवेचनापूर्वक विचार करनेसे ज्ञात होता है कि राम सिर्फ कीर्तिके वास्ते जान देते थे। उसके लिए सब-कुछ करनेको तैयार रहते थे। सीताके साथ उनका व्यवहार देखिए। वैसी क्लिष्टावस्थामें भी, जिस सीताने रावणसे एक वर्षका समय माँगा, जो पतिके विजयार्थ तपस्या करती हुई निर्निमेष दृष्टिसे प्रतीक्षा करती रही,—उस सीताको रावण-वध हो जानेके बाद ही रामने विभीषणद्वारा खबर भेजी। तब—

"विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥ ३४ ॥

—युद्ध-काण्ड सर्ग ११४,

अर्थात् पतिको देवता समझनेवाली और अतिशय सौम्य मुखवाली वह (सीता) आश्चर्यसे, आनन्दसे, और स्नेहसे अपने भर्ताका सुन्दर मुख देखती रही। फिर 'सा वस्त्रसंरुद्धमुखी लज्जया जनसंसदि' वह लज्जाके कारण मुँह वस्त्रसे ढँककर जन-समाजके सामने खड़ी हुई। उस समय रामका 'हृदयान्तर्गतक्रोधो व्याहर्तुमुप-चक्रमे' हृदयान्तर्गत क्रोध दिखानेके लिए तैयार होना कितना नीच, कितना अपमानकारी और कितना असमयोचित है?

'एषाऽसि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम् ॥ २ ॥

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ॥ ३ ॥
अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभवाम्यद्य चात्मनः ॥ ४ ॥
या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥ ५ ॥
सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजसः ॥ ६ ॥

× × × ×

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिरक्षता ॥ १६ ॥
निर्जितासि मया भद्रे शत्रुहस्तादमर्षिणा ।
प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता ॥ १७ ॥
तद्गच्छ ह्यभ्यनुज्ञाता यथेष्टं जनकात्मजे ।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥ १८ ॥
कः पुमान्हि कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।
तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहृल्लेख्येन चेतसा ॥ १९ ॥
रावणांकपरिभ्रष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा ।
कथं त्वां पुनरादद्यात्कुलं व्यपदिशन् महत् ॥ २० ॥
न हि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोहराम्,
मर्षयेत चिरं सीते स्वगृहे परिवर्त्तिनीम् ॥ २१ ॥
यदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया ।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वंगो यथेष्टं गम्यतामितः ॥ २२ ॥

इति प्रव्याहृतं भद्रे मयैतत्कृतबुद्धिना ।
लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥ २३ ॥
सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा राक्षसेन्द्रे विभीषणे ।
निवेशय मनः सीते त्वं यथासुखमात्मनः ॥ २४ ॥

—युद्ध-काण्ड, सर्ग ११५

अर्थात् युद्धमें शत्रुओंको हराकर तुम्हें जीता। पुरुषार्थयुक्त कार्य मैंने किया। मेरे क्रोधका अन्त हुआ। शत्रु-समूहके साथ ही साथ अपमानको भी नष्ट कर डाला। आज मेरी वीरता प्रकट हुई। परिश्रम सफल हुआ। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके आज मैं अपनी आत्माका स्वामी हुआ हूँ। मेरी अनुपस्थितिमें राक्षस तुम्हें ले गये। दैवद्वारा सम्प्राप्त दोषको मैंने मनुष्य-प्रयत्न-से जीत लिया। संप्राप्त अपमानको जो पुरुष अपने तेजसे मिटा नहीं डालता उस अल्प तेजवालेका पुरुषार्थ क्या? सर्वत्र आनेवाले कलंकसे अपने प्रसिद्ध वंशकी रक्षा करनेवाले (राम) द्वारा तुम शत्रुओंके हाथसे निकाली गई हो। सन्देहपूर्ण चरित्रवाली तुम मेरे सामने खड़ी हो। इन दशों दिशाओंमें मेरा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं रहा। अच्छे कुलमें उत्पन्न कोई पुरुष भी पर-पुरुषके गृहमें निवास कर आई हुई स्त्रीको पुनः कैसे स्वीकार कर सकता है? अपने महान् कुलकी ओर देखते हुए मैं तुम्हें कैसे ग्रहण करूँ? अपनी कीर्तिको पुनः प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ही मैंने तुम्हें जीता है। दिव्यरूपवाली मनोहारिणी तुमको घरमें देखकर रावण कबतक निग्रह कर सका होगा? तुम्हारे ऊपर मुझे अब जरा भी आसक्ति नहीं है, यह निश्चय-पूर्वक कह रहा हूँ। अब तुम यहाँसे जहाँ जीमें आवे चली जाओ। अथवा लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, विभीषणादिमेंसे किसीमें,—जिससे तुम्हें सुख हो,—अपना मन लगाओ।

सीतासे रामका ऐसा कहना कैसा है? जैसे एक नीच आदमीका जवाब हो। सूर्यवंशके गौरव और शत्रुजित् होनेके गर्वसे उन्मत्त रामके लिए 'रावणांक-परिभ्रष्टा' सीता अग्राह्य हुई और उन्होंने उससे वहाँसे जानेको कहा। यह तो किसी हद तक सह्य भी है; पर लक्ष्मण विभीषणादिमेंसे किसी एकको स्वीकार करनेकी सलाह देना तो अक्षम्य अपराध है,—नीचताकी हद है। ऐसे पुरुषको आदर्श पति मानना स्त्री-समाजके प्रति अन्याय करना है, उनका गला घोंटना है तथा पतियोंको सिर चढ़ानेका मार्ग प्रशस्त करना है

यहाँ मैं एक ऐसे पुरुषका आदर्श उपस्थित करता हूँ जो अपनी स्त्रीके प्रति जनताका बुरा विचार देखकर भी धर्मके बताये हुए मार्गपर साहसके साथ चला गया।

अफगानिस्तानके भूतपूर्व बादशाह अमानुल्लाहने देखा कि हमारे यहाँकी स्त्रियाँ पुरुषोंके काम-विकारकी पूर्तिके सिवा और किसी काममें नहीं आ रही हैं। उसका मूल कारण पर्दा है। यह स्थिति बदले, मेरे देशकी स्त्रियाँ भी अन्य देशोंकी तरह देशसेविकायें बनें, पंडितायें बनें, स्वतंत्र होकर देशके कुछ काम आवें, इस लिए पर्दा उठा देना चाहिए और सबसे पहले उसकी बेगम सुरैयाने पर्देको फाड़कर फेंक दिया।

बस, लोगोंने हल्ला मचाना शुरू किया—हुजूर, बेगम साहबाने बुर्का हटाकर दीनकी रूसे बड़ा गुनाह किया है, इसलिए आप उन्हें तलाक़ दे दें।

यह एक तुच्छ धोबीके मुँहकी क्षीण आवाज नहीं थी, वरन् सारी प्रजाकी स्पष्ट और बुलन्द आवाज़ थी—इच्छा थी। फिर भी अमानुल्लाहने रामकी तरह सिर्फ स्वार्थ, राज्य, कीर्तिको ही नहीं चाहा। अपनी इज्जत और नामकी परवाह नहीं की। धर्मने जिधर इशारा किया, न्यायने जिस ओर संकेत किया, वह उसी ओर चला। उसने दृढतासे कहा—सुरैया मेरी धर्मपत्नी है, विवाहिता स्त्री है और धर्मपूर्ण जीवनमें आनेवाले सुख-दुःखोंको समानरूपसे बाँट लेनेकी शपथ ही विवाह है। मैं उस बन्धनमें बँधा हूँ। सुरैया पतिव्रता है, मैं पत्नी-व्रती हूँ। देशकल्याणके लिए उसने ठीक ही किया है। मैं उसका समर्थन करता हूँ, करूँगा, उसके पक्षमें खड़ा रहूँगा, इसके लिए राज्य भी छोड़ देना पड़े तो कोई हर्ज नहीं।

राज्यके लिए या प्रजाके सद्भावके लिए उसने सुरैया बेगमके प्रति अन्याय नहीं किया। वह अपनी प्रजाको प्यार भी बहुत करता था। जब लोगोंने विद्रोह कर दिया और मंत्रियोंने तथा मित्रोंने दमनकी सलाह दी, तब भी उसने उनकी राय नहीं मानी और कहा, मैं अपनी प्रजासे युद्ध नहीं करूँगा, इस कार्यके लिए मैं एक आदमीकी भी जान अपने हाथसे नहीं लेना चाहता। यह राज्य मैं उन्हींके हाथों सौंप कर चला जाऊँगा, जिससे वे मेरे सद्भाव-प्रेरित कार्योंको समझ सकें।

इसके बाद वह अपनी पत्नी और बच्चोंको लेकर परदेश चला गया।

ऐसे पुरुषोंद्वारा ही स्त्रियोंको गौरव स्थिर रहता है, न कि एक धोबीके मुँहसे निकली हुई बातको प्रज़ाका मत समझकर पत्नीको घरसे निकाल देनेवालोंके द्वारा।

पतिके घोर अन्याय करनेपर भी आँसुओंको भीतर ही भीतर पी जानेवाली, पतिके दुष्ट कर्मोंको सुधारनेका भी अधिकार नहीं रखनेवाली, पति चाहे जिस गढ़ेमें उतारे, इच्छा न रहनेपर भी बिना चीं-चपड़के उसमें उतरनेवाली, पति उसके जीवनको कितना भी नीच, घृणित, दुर्भर बना दे पर जन्म-जन्मान्तरमें भी वैसे ही पतिकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करनेवाली, भीतर कुढ़कुढ़कर मरते रहनेपर भी बाहर जरा भी प्रतिकूल भाव न दिखा सकनेवाली,—हिन्दू स्त्री आज इस हीन दशा तक न पहुँचती, यदि उसके सामने ' सीता-सी पतिव्रता ' का—जिसमें उपर्युक्त सब अद्भुत भाव भरे हैं—आदर्श न रखा जाता।

' राम-राज्य ' और ' सीता-सी पतिव्रता ' का जप करनेवाले तथा उसी आदर्शको सामने रखकर उससे होनेवाले नित्य-प्रतिके अत्याचारों और रोमांचकारी घटनाओंको न समझ सकनेवाले समाजको सदा देखते रहनेके कारण ही मैं ऐसा लिख सका हूँ।

अब तीसरे आक्षेपपर विचार करूँगा।

पर-पुरुषसे स्नेह-पूर्वक व्यवहार करना पतिव्रताका दोष क्यों माना जाय ? नीति, धर्म और सदाचारका अर्थ तो सबके वास्ते एक-सा ही होना चाहिए। व्यक्तिके अनुसार तो उसमें भिन्नता या परिवर्तन न होना चाहिए। लेकिन समाजने व्यक्तियोंको अपने निर्धारित नियमपर चलानेके लिए धर्म और सदाचार-का निर्णय भी भिन्न भिन्न तरहसे किया है। पुरुषोंके वास्ते अलग नीति है और स्त्रियोंके वास्ते अलग। बहुत-सी बातें जो पुरुषोंके लिए दोष नहीं हैं स्त्रियोंके लिए कलंकका कारण हो जाती हैं। इस बातमें हमें वाल्मीकीय रामायण कितनी सहायता करती है, यह देखिए। युद्धके बाद विस्मय, आनन्द तथा स्नेह-मिश्रित मुख-मुद्रा लिये प्रथम दर्शनके लिए सीता आती है रामके पास। उस समय राम क्रुद्ध होकर विषका तीर छोड़ते हैं—" जाओ यहाँसे जहाँ जीमें आवे। रावणकी गोदसे भ्रष्ट हुई तुमको कौन पुरुष स्वीकार करेगा ? "

उस समय अश्रुपूरिता और लज्जासे अपने अंगोंमें समाई जाती हुई सीता जवाब देती है—

" प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा।
वाक्शल्यैस्तैःसशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ २

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ५
न तथास्मि महाबाहो यथात्वमवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे येन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ६ ॥
पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशंकसे ।
परित्यजेमां शंकां तु यदि तेऽहं परीक्षिता ॥ ७
यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ८ ॥
मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्त्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥ ९ ॥
सह संवृद्धभावाच्च संसर्गेण च मानद ।
यद्यहं ते न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ १० ॥
प्रेषितस्तते यदा वीरो हनूमानवलोकक: ।
लंकास्थाऽहं त्वया वीर किं तदा न विसर्जिता ॥ ११ ॥
प्रत्यक्षं वानरेन्द्रस्य तद्वाक्यसमनन्तरम् ।
त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया ॥ १२ ॥
न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात्संशये न्यस्य जीवितम् ।
सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥ १३ ॥
त्वया तु नर-शार्दूल क्रोधमेवानुवर्त्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ १४ ॥
अपदेशेन जनकान्नोत्पत्तिवर्सुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु तेन पुरस्कृतम् ॥ १५ ॥
अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्ताया जनसंसदि ।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

—युद्धकाण्ड, सर्ग ११६ ।

अर्थात् इस तरह मामूली आदमी जैसी बातें कर रहे हो। लेकिन जैसा तुम समझ रहे हो, वैसी मैं नहीं हूँ। मेरे चरित्रको समझकर इसपर विश्वास करो। मैं शपथ करती हूँ। रावणके शरीर-स्पर्शका अपराध तो मेरा नहीं है,—इसमें लेशमात्र भी मेरी इच्छा न थी। इसका अपराधी कोई है तो दैव ही। हृदय जो मेरे अधीन था वह तो तुम्हारेमें ही लग्न था,—पर शरीर पराधीन हो गया, उसका मैं क्या करती? इतने दिन साथ रहनेपर भी यदि तुम मेरा शील न समझ सके, तो मैं कबकी नष्ट हो चुकी। जब तुमने हनुमानको मुझे देखने लंका भेजा था तभी क्यों न छोड़ दिया? यदि उसी समय परित्यागकी खबर दे देते, तो मैं अपना अंत सोच लेती। फिर इसके लिए इतने प्राणियोंकी हत्या क्यों की गई? इतने मित्रोंको कष्ट क्यों दिया गया? क्रोधका अनुसरण कर तुम नीच मनुष्योंकी तरह स्त्रीत्वको पुरस्कृत कर रहे हो, नीच मनुष्योंकी तरह स्त्री-नामसे ही सन्देह करने लगे। स्त्री कहकर स्त्री-जातिपर ही तुम शंकाकी दृष्टि डाल रहे हो। मेरा चरित्र, मेरा वंश,—इन सब बातोंका तुम कुछ भी ख्याल नहीं करते। अब परित्यक्ता मैं, इस जनसमूहके सामने अग्निदेवको समर्पित हो जाऊँ,—यही उचित है।

इतना कहना था कि रामको मौका मिला। उन्होंने लक्ष्मणको इशारा किया। लक्ष्मणने अग्नि प्रज्वलित की। सीता अग्निमें प्रवेश कर फिर निर्मल कांतिके साथ बाहर आई।

इस तरह अपनी पवित्रता सिद्ध कर दिखानेपर भी अयोध्या पहुँचनेपर आदर्श भर्ता रामने उसके साथ जैसा व्यवहार किया सो हम पहले ही देख चुके हैं। धोबीके मुँहसे वह अपवाद निकलते ही तुरत रामने अग्नि-प्रवेशके लिए फिर 'वन्स-मोर' (Once more) कहा। लेकिन आत्माभिमानिनी सीताने स्वीकार नहीं किया।

तब लक्ष्मणसे चुपचाप सलाह हुई। वन-विहारके बहाने सीताको ले जाकर लक्ष्मणने जंगलमें छोड़ दिया। यह अत्याचार क्यों किया गया? इसलिए कि सीता स्त्री थी। स्त्रीके चरित्रमें कहीं भी शंकाकी जगह हो तो तुरत ही उसे 'सुप्रीम-कोर्ट' रूपी पतिके पास उसका निर्णय कराना होगा। इतना ही नहीं, फिर चीफ जस्टिसके फैसलेके अनुसार उसे जनताके आगे अपनी पवित्रता साबित करनी होगी। नहीं तो, वह पतिदेवताद्वारा स्वीकृत नहीं हो सकती। अब वह बेचारी किसी तरह जनताका सद्भाव प्राप्त करे, अन्यथा कोई उपाय नहीं। भला जनताको पति-पत्नीके बीचमें पड़नेकी क्या जरूरत है? इसीलिए, कि समाजमें स्त्री व्यक्तिके स्थानपर विराजमान नहीं है। इसीलिए उसकी ख्याति या अपख्याति उसकी नहीं, उसकी इज्जत

उसकी अपनी नहीं। उसका गौरव इतना ही है कि वह अमुक व्यक्तिकी पत्नी है। इसीलिए, अमुक व्यक्तिकी पत्नी ऐसी-वैसी है, यह कलंक उसके पतिको न लगे, इतनी सावधानीसे स्त्रीको रहना चाहिए। यहाँतक कि एक धोबी भी कोई बात उसके प्रति न कह सके। रामायणके आदर्शने यहाँतक हमारी दुर्दशा कर दी है!

पक्षपात-रहित दृष्टिसे विचार करनेपर यही स्पष्ट होगा कि सदाचार और नीतिका बन्धन सबपर समानरूपसे ही लागू होना चाहिए। अच्छा, यदि यही मान लिया जाय कि पुरुषमात्रपर एक ही नियम लागू है, तो मैं एक प्रश्न करूँगा। रामसे शूर्पनखाने प्रेम किया था। रामको पानेके लिए उसने अनेक प्रयत्न भी किये थे। फिर, सीता-हरणके बाद रामने भी विरहावस्थामें जीवन बिताया। उसी समय व्यर्थ ही भाइयोंके झगड़ेमें फँसकर और बालिको अन्याय-पूर्वक मारकर उसकी पत्नी तारा उन्होंने सुग्रीवके हाथ सौंप दी। बिना किसी ननु-नचके हस्तान्तरित होनेवाली ताराके मुआमलेमें भी रामने बेकार ही हाथ डाला। फिर, इन दोनों घटनाओंमें राम पवित्र ही रहे,—इसके प्रमाणके लिए तो उन्होंने एक बार भी अग्नि-परीक्षा नहीं दी। ऐसा क्यों? इस प्रश्नका उत्तर आप न्यायकी हदसे बाहर होकर देंगे। आप कहेंगे,—राम तो पुरुष थे। पुरुषकी पवित्रता कैसे नष्ट होगी?

इस तरह पुरुषोंके वास्ते अलग और स्त्रियोंके वास्ते अलग आचार और धर्मका निर्णय करनेवाले इन ग्रन्थोंके कारण ही हिन्दू स्त्रियाँ इस हालत तक पहुँची हैं। इन ग्रन्थोंने स्त्रियोंका नाश करनेके लिए कल्पनायें भी कैसी कैसी की हैं!—"स्त्री हृदय और आत्मासे रहित है। उसका सब कुछ पति ही है।" इसलिए स्त्री 'भार्या' अर्थात् पतिके द्वारा भरित या पोषित होनेवाली, और पुरुष मूँछोंपर ताव देता हुआ 'भर्त्ता' अर्थात् भरण पोषण करनेवाला, हुआ,—चाहे वह भार्याद्वारा उपार्जित धनसे ही पेट क्यों न पालता हो। सिर्फ शब्दसे ही सही,—वह भरण-पोषण करनेवाला तो होता ही है। इसलिए, स्त्रीके धर्म, नीति, व्यवहार आदिका निर्णयकर्त्ता वही है जिससे वह अपनी कीर्ति और सुख प्राप्त कर सके। स्त्रीके हृदय और आत्मा नहीं है, इसलिए वह किसी तरहकी भी विशेषतासे या व्यक्तित्वसे रहित 'वस्तु' (a thing) हो गई है 'भार्या'। फिर 'वस्तु' अपनी नीति और सदाचारका निर्णय आप नहीं करती, अतः उस 'वस्तु'का उपयोग करनेवाला उस 'वस्तु' की नीति और धर्मका निर्णय करता है। स्त्री नित्य उपयोगमें आनेवाली निर्जीव वस्तुके समान,—छाता-छड़ी-घड़ीके

समान,—हो गई है, इसलिए अपने बारेमें वह आप निर्णय नहीं कर सकती। फिर उसे स्वतंत्रता कैसी? तब तो पर-पुरुषके साथ स्नेहका बर्ताव सदाचारके बाहर होगा ही स्त्रीके लिए।

स्त्रीको भी अपने धर्मका निर्णयाधिकार है। उसके भी आत्मा है, हृदय है। यदि यह बात स्वीकार की जाती तो बड़ी झंझट खड़ी होती। आत्माका होना स्वीकार करनेसे व्यक्तित्वका होना भी मानना पड़ता। फिर व्यक्तित्व माननेपर कर्मका अधिकार भी कुबूल करना पड़ता। फिर कर्मका अधिकार होनेपर अपने कार्योंके लिए वह खुद ही उत्तरदात्री होती और अपना उत्तरदायित्व अपने ऊपर रहना ही स्वतंत्रता है। यह सब झंझट देखकर ही हिन्दू-धर्म-वेत्ताओंने एक छोटेसे ही सूत्रसे कि, 'स्त्रीके आत्मा नहीं है' (पति ही उसकी आत्मा परमात्मा है) स्त्रीका सर्वस्व अपहरणकर उसे बन्धनमें डाल दिया।

मेरे इस नाटककी सीता पगपगपर अपने धर्मका आप ही निर्णय कर शीलकी रक्षा करनेवाली और स्वतंत्र व्यक्तित्ववाली स्त्री है। इसलिए, पर-पुरुषसे वह स्नेह-पूर्ण बर्ताव कर सकी है। रामद्वारा किये गये अत्याचार और लगाये गये कलंकको,—जिसमें सिर्फ रामकी यशोलिप्सा ही झलक रही है,—न सहन कर सकनेके कारण तथा पतिद्वारा (रामद्वारा) स्वार्थ-भावसे किये गये सब अपमानों, अत्याचारोंको सहना और उसकी सब भली-बुरी इच्छाओंके आगे गुलामकी तरह सिर झुकाना ही पतिव्रतका आदर्श न माननेके कारण ही इस नाटककी सीता अपने पवित्र स्थानसे च्युत नहीं हो सकती।

वाल्मीकिकी सीता अत्याचार करनेपर भी रामके साथ बड़ी मनुष्यताके साथ पेश आई जिससे राम भी लज्जित हों—यह बात पहले किये गये विचारों तथा सीता-निर्वासनकी घटनाका विवेचन करनेसे समझमें आ सकती है। सीता-निर्वासनका मैं अन्तमें—'असली कथा'में,—विवेचन करूँगा।

अन्तमें इस बातपर भी विचार करना है कि रावणका सिर अपनी जाँघपर रखनेसे सीताका पातिव्रत्य नष्ट हो गया या नहीं। रावण सीतासे प्रेम कर नाना कष्ट उठाकर उसके लिए अपनेको नाश करनेको भी तैयार हुआ था। उसी हालतमें वह सीताके पैरोंके पास मूर्छित हुआ था। वैसी स्थितिमें सीताका वैसा व्यवहार करना मुझे दोष-पूर्ण नहीं मालूम पड़ता। वरन् यदि सीता वैसा न करती, तो वह उसकी त्रुटि समझी जाती।

सामाजिक नियमोंके मानसिक गुलाम हो जानेवाले अभागे मनुष्य भी किसीको विपत्तिमें देखकर सहारा देनेको संभवतः उत्सुक हो जाते हैं।

मान लीजिए एक अछूत या चांडाल पानीमें डूब रहा है या किसी खतरेमें पड़ा है। उसकी हालत देखकर किसी कट्टर सनातनी ब्राह्मणका हृदय भी पहले उसकी सहायताको अवश्य झुकेगा। हाँ, बादमें उत्तम मानवताको भस्मसात् कर नीच स्वार्थको सहारा देनेवाली ब्राह्मणत्वकी कल्पना उसे पीछे खींच ले सकती है। वह सहारा देनेसे मुकरनेवाला व्यक्ति स्वार्थी ब्राह्मण भले ही हो, उत्तम मानव नहीं हो सकता। सहज मनुष्यताका खून कर डालनेवाली यह भावना गर्हित ही होगी। किसीको दुःखमें देखकर जब मानवताशून्य हृदय ही एकाएक सहायताको आतुर हो जाता है, तब वह हृदय,—जिसने निर्मल मानवताको मल-विहीन आइनेकी तरह स्वच्छ रखा है,—बिना विचारे सहायताके वास्ते दौड़े तो कुछ आश्चर्य नहीं है, बल्कि स्वाभाविक है। फिर स्त्री-हृदय तो ऐसे कार्योंमें सबसे आगे दौड़ता है। इन बातोंको स्वीकार करनेवाला सीताके उस कार्यकी प्रशंसा ही करेगा,—संदेहात्मक प्रश्न नहीं।

इस बातको स्वीकार कर लेनेपर भी पर-पुरुषके स्पर्शका प्रश्न रह ही जाता है। उसपर भी मैं कुछ विचार करूँगा। प्राच्य जातियोंके (वर्तमान जापानके सिवा) पतनका एक कारण यह स्पर्शभय भी है। इसके कारण प्राच्य समाजोंमें जो परिवर्तन हुए हैं उनपर दृष्टि-पात कीजिए। वयःप्राप्त पुत्रको माता, युवती बहिनको भाई, स्पर्श करनेका,—आलिंगन करनेका,—साहस नहीं करता। मतलब, इस सीमातीत स्पर्श-भयने सहज मातृत्व और सहज भ्रातृत्वको भी दुःस्सह रूप दे दिया है। यह कितना लज्जास्पद विषय है ? जब हम प्रेमी-प्रेमिकाओंके स्पर्शके सिवा अन्य किसी स्पर्शसे स्पंदित न होंगे,—हमारा हृदय कंटकित न होगा,—तब हमारा नैतिक जीवन कितना उन्नत होगा ?

हमारे मनमें शंका उठती है कि यह सिद्धान्त मान्य होनेपर भी क्या संभव होगा ? लेकिन संभव क्यों न होगा ? जिस वस्तुको हम दुर्लभ या अलभ्य बना देते हैं उसीके लिए लालायित अथवा मोहित होना मानव-स्वभाव है। एक-दो उदाहरण देता हूँ—

१ गोरी जातियोंमें यह एक विचित्र प्रथा थी कि पैरका कोई भाग दिखाई न पड़े। इसलिए स्त्री-पुरुष पूरे मोजे पहनते थे। निरन्तरके अभ्यासके कारण यह शिष्टाचारमें परिणत हो गया। अन्तमें उनकी हालत यहाँतक पहुँची कि मोजेके बिना खुली हुई एड़ी दिखाई पड़नेसे ही उन्हें कामोद्रेक होने लगा। अब बुद्धिमान लोग सोचें कि एड़ियोंसे कामोद्रेकका क्या सम्बन्ध है ? क्या यह समाजके कठोर नियमोंद्वारा मानव-प्रकृतिको बेहद नीच बनाना नहीं है ?

२ मलयालम (ट्रावनकोर) प्रदेशमें स्त्रियोंका चोली पहनना आवश्यक नहीं है। प्रायः उनके वक्षःस्थल खुले ही रहते हैं। परन्तु यह दृश्य वहाँके पुरुषोंमें विकार नहीं पैदा करता।

३ स्पर्श भी दृष्टि-तुल्य है। पाश्चात्य लोग स्पर्शको विशेषता नहीं देते। वहाँ स्त्रियाँ किसी भी पुरुषके साथ बिना किसी विकारको प्राप्त हुए बैठतीं, सफर करतीं या स्पर्श करती हैं। उस साहसको देखकर यहाँकी स्त्रियोंको स्तंभित ही रह जाना पड़ता है।

पर-पुरुषके स्पर्शसे ही धर्म और सदाचार-भ्रष्टताकी दुहाई देकर स्त्रियोंकी स्थिति सामाजिक दृष्टिसे हमने बहुत गिरा दी है। स्त्री-पुरुषके बीचमें पंचेन्द्रियाँ सिर्फ उद्रेकका ही कारण हो सकती हैं, इस कल्पनासे, तथा स्पर्शका ऐसा भया-वह अर्थ करनेसे ही, स्त्रियोंकी स्वतंत्रताका लोप हुआ,—वे बन्धनमें पड़ीं।

स्पर्श मानसिक-विकार-सन्निहित है। प्रत्येक स्पर्श यदि मानसिक विकार उत्पन्न करे तो उस व्यक्तिका सदाचार जरूर कल्मष-पूर्ण कहा जायगा। मानसिक विकार उत्पन्न होनेपर स्पर्शमें सुखकी प्राप्ति उत्तम है, परन्तु स्पर्श-मात्रसे मानसिक-विकार होना घृणित है। मानसिक विकार उत्पन्न होनेके बाद ही यदि हम स्पर्शको स्थान दें तो नैतिक-दृष्टिसे उन्नत होंगे।

स्त्री कहनेसे सिर्फ शरीरका ही बोध नहीं होता है, वरन् उसके हृदय और आत्माका भी। स्पर्शका सम्बन्ध शरीरसे है, परन्तु, कामका सम्बन्ध हृदयसे है और आध्यात्मिक जिज्ञासाका सम्बन्ध आत्मासे। जिस जातिने स्पर्शका सम्बन्ध कामसे और कामका आध्यात्मिकतासे जोड़ दिया हो,—अर्थात् कामको स्पर्शके वश और आत्माको कामके वश कर दिया हो, उसकी गणना अधमोंमें करनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

जिस स्पर्शमें रोगके कीटाणु न हों, उससे शरीरकी पवित्रता नष्ट नहीं हो सकती। जिस स्पर्शसे मानसिक विकार उत्पन्न न हो उससे परहेज़ रखनेकी आवश्यकता नहीं। उस स्थितिमें मानसिक पवित्रता किसी तरह भी नहीं बिगड़ सकती। स्त्री यदि शरीरमात्र ही न हो तथा हरएक स्पर्शसे मनोविकार प्राप्त होने-वाली दशामें भी न हो, तो स्पर्शसे किसी भी तरह उसकी पवित्रता और उसका पातिव्रत्य भंग नहीं हो सकता। यह यदि संभव हो जाय तो स्त्रीको पर-पुरुषसे भयभीत होकर रहनेकी आवश्यकता न रह जाय। इन कारणोंको समझकर यदि इस नाटककी सीताकी आलोचना की जाय तो उसका कार्य उत्तम ही प्रतीत होगा।

इस नाटकके बारेमें और दो-चार बातें कहनी हैं। स्वयंवरसे पहले राम और रावणका सीतासे मिलना, पंचवटीमें रावणका आकर सीतारामको लंका चलनेका निमंत्रण देना तथा शबरीकी कथाको कुछ पहलेहीका बताना, आदि बातें वाल्मीकि रामायणमें नहीं हैं। यदि इन नई कल्पनाओंने कलामें कुछ भी चमक ला दी हो, कुछ भी श्री-वृद्धि की हो, तो उसीसे उनका समर्थन हो जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि मैंने रावणके चरित्रको सहानुभूति-पूर्ण कलमसे चित्रित किया है जो रामायणके विरुद्ध है। इसका कारण मैंने पहले ही बतला दिया है। रामायणकी नीतिका अनुसरण कर रावणके चरित्रको ऊपर उठानेके लिए सीता या रामके चरित्रमें किसी तरहकी त्रुटिकी कल्पनासे सहायता नहीं ली गई है। बल्कि रामायणसे भी अधिक उत्तम, ज़्यादा गंभीर, ज़्यादा उदार तथा उत्तम मानवता, सत्य, तेज और पवित्रात्मावाले सीता-रामका निर्माण करनेकी कोशिश की है।

जीसस (ईसा) के बारेमें गाँधीजीने एक बार अपना मत यों दिया था— "जीससमें बहुत ही महान् आदर्श दिखलाई पड़ते हैं। उनको मानवजातिका लक्ष्य बनाना उत्तम है। जीसस नामक व्यक्ति कभी था या नहीं, उसके बारेमें लिखी गई बातें सत्य हैं अथवा नहीं, इससे हमारा कोई मतलब नहीं। यदि कल किसी पुरातत्त्वान्वेषणके बाद बाईबिलका जीसस काल्पनिक ही साबित हो, तो भी मैं जीससको इतना ही महत्त्व दूँगा।" ईसाइयोंके जीससकी तरह ही हिन्दुओंके राम हैं। राम केवल इतिहास पढ़नेवालोंसे ही सम्बन्ध नहीं रखते। बल्कि उन्होंने हिन्दू-जीवनको तमाम छा लिया है। अर्थात् हिन्दू-समाज अनेक बातोंमें इस इतिहासको ही अपना लक्ष्य मानता आया है। इसलिए, रामायण-कालसे लेकर आज तक मनुष्य-जातिका मानसिक-विकास जहाँ तक हुआ है, उस परिमाणकी दृष्टिसे मैंने इस पुस्तकमें यह निर्धारित करनेकी चेष्टा की है कि सीता, राम और रावणकी-सी परिस्थितिमें पड़ जानेपर अथवा राम-रावणकी तरह दो भिन्न उद्देश्य-वालोंमें संघर्ष उपस्थित होनेपर कैसा व्यवहार न्याय-संगत और उत्तम होगा। गाँधीजीके कथनानुसार आदर्श-प्राय उत्तम जीवन सिर्फ इतिहासकी वस्तु नहीं हो सकता। अतः उसमें नूतन अर्थकी कल्पना करना उस चरित्रको नित्य नूतन बनाना ही है।

मानव-हृदयमें दया आदि महत्तर गुणोंकी वृद्धि करना तथा शत्रुके प्रति भी सहानुभूति उत्पन्न होनेवाले भावोंकी सृष्टि करना मानवताको सच्चा मार्ग दिखाना है।

असली कथा

वाल्मीकीय रामायणके कुछ भागोंपर विचार करनेके बाद असली कथा ऐसी माॡम होती है—

दशरथ स्त्री-लोलुप थे। उनकी ३६५ स्त्रियाँ थीं। कैकेयी इस देशकी स्त्री नहीं थी। वह वाल्हीक देशके गिरिवज्रपुरके राजाकी बेटी थी। आज-कल यह स्थान अफगानिस्तानमें है। 'कैकेयी' 'कैकोस्तो' 'कैकोबाद' आदि नामोंमें भी बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। कैकेयी दूसरे देशकी स्त्री थी इसलिए दशरथका उसपर अधिक प्रेम था। रामके अभिषेकके समय कैकेयीने किसी तरहकी बाधा नहीं उपस्थित की। लेकिन मंथराने उसमें हाथ डाला। वह कैकयीके साथ नैहरसे आई हुई लौंडी थी। उसने इस तरह उपदेश दिया होगा—इस देशमें हम पराई ही रहेंगीं, अपनी नहीं हो सकतीं। अभी तुम दशरथकी प्यारी हो; पर रामके राजा होनेपर कौशल्या ही अधिकारिणी होगी। वह तुम्हें और तुम्हारी संतानको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखे बिना न रहेगी। इसलिए, किसी तरह रामका अभिषेक रोककर भरतको राज्य दिलवानेकी कोशिश करो। यदि ऐसा न करोगी, तो—

> हृष्टाः खलु भविष्यान्ति, रामस्य परमा स्त्रियः।
> अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नूषास्ते भरतक्षये॥

अर्थात् रामकी प्रिय स्त्रियाँ आनन्द प्राप्त करेंगीं और भरतकी पत्नियाँ,—तुम्हारी पुत्र-वधुयें,—आनन्दरहित हो जीवन बितावेंगी।

मंथराके तर्कने कैकेयीके मनमें परिवर्तन ला दिया। बस, कैकयीकी ज़िद होकर ही रही। राम दशरथके चाहे जितने भी प्यारे रहे हों, पर दशरथ स्त्रीके आगे झुक गये। इसलिए, राम राज्य-भ्रष्ट हुए। यह समाचार सुनकर भरत

अपने नानाके घर गिरिवज्रपुरसे अयोध्या आये, परन्तु, माताकी रायसे सहमत न हुए। भरतकी प्रार्थना रामने भी नहीं मानी। इसलिए, वनवास प्रारंभ हुआ। रामने अनार्योंको हराते हुए दिग्विजय प्रारंभ किया। रावणकी प्रशंसा सुनकर रामको उसे भी जीतनेकी इच्छा हुई। अन्यथा चित्रकूट या किसी समीपस्थ अरण्यमें अपनी अवधि न बिताकर वे दक्षिणकी ओर क्यों बढ़ते? तथा मुनियोंकी अर्जीपर राक्षस-जातिके संहारको क्यों तैयार होते?

रावण लंकाको राजधानी बनाकर सारे दक्षिणापथपर राज्य करता था। वह महाबली था। उसकी दो बाँहें बीस बाँहोंके बराबर थीं। एक सिर दस सिरके समान था। यही नहीं, उसकी जातिके लोग अनेक विद्याओंमें पारंगत होकर वायुयान आदि यंत्रोंका आविष्कार कर बड़े बलवान् तथा उन्नत हो रहे थे।

अपनी जातिवालोंका रामद्वारा सत्यानाश होना सुनकर भी रावण कुछ न बोला। किन्तु, सीताका सौन्दर्य देख वह चकित रह गया। उसने सीता-हरण किया। बहुत शिष्टतापूर्वक सीताके साथ पेश आते हुए उसने प्रार्थना की कि शरीर-सुख ही मैं नहीं चाहता, उससे ही मेरी तृप्ति न होगी। तुम मेरी पत्नी बनो। सीताने एक वर्षकी अवधि माँगी। उसने स्वीकार किया।

इसी बीच रामने बालिको अधर्मसे मारा और तारा तथा उसका राज्य उसके छोटे भाई सुग्रीवके अधीन किया। फिर वे वानर-सेना तैयार कर लंकामें घुसे। युद्ध आसन्न होनेपर रावणने अपने मित्रों बन्धुओंसे राय पूछी। इस समय सीताको रामके पास भेज देना, भयभीत होकर सिर झुकाना होगा—यह नहीं हो सकता, आदि बातें कहकर कुंभकर्णने जोश दिलाया।

विभीषण रावणका छोटा भाई था। बड़ा चलाक और जालसाज़ था। डूब-कर पानी पीता था। धर्मका मार्ग बतलाते हुए उसने रावणको धमकी दी कि क्षमा-याचनाके साथ सीताको न लौटा दोगे, तो राम तुम्हारा सत्यानाश कर डालेगा। रावणने क्रोधित होकर कहा, "कायर, तू इस तरह शत्रु-पक्षकी बातें क्यों कर रहा है?" विभीषणने जवाब दिया, "नहीं नहीं, सो बात नहीं है। रामके बाण जब तुम्हारे शरीरमें लगकर कष्ट पहुँचायेंगे, तब वह मैं नहीं देख सकूँगा। इसलिए, तुम्हारा कुशल सोचकर ही ऐसा कह रहा हूँ। यदि मेरी बात तुम्हें न रुचती हों तो लो, मैं ही कहीं चला जाता हूँ। कहीं भी रहूँगा, तुम्हारी विजय-कामना लेकर ही रहूँगा। विरुद्ध आवाज़ उठानेवालेके न रहनेपर तुम सुखी

होना।" मानो विभीषणको भाईपर बड़ा प्रेम था। ख़ैर, कहीं जानेका बहाना करके लंका छोड़कर वह द्रोही पहुँचा रामके पास। रामसे आश्रय माँगते हुए उसने कहा, "रावणको जीतनेका उपाय तथा लंकापुरीका सारा रहस्य मैं आपको बतलाऊँगा। आप कृपाकर मुझे अपनी शरणमें रख लें।" सुग्रीवादिकोंके मना करनेपर भी कि यह भी एक राक्षसोंकी नीति है, यह हमारा रहस्य लेने आया है, इसे अपने पास न रक्खें,—रामने दूर-दृष्टिसे विभीषणको अपने साथ रख लिया। इतना ही नहीं वरन् उसको सब तरहसे अपना गुलाम बना लेने तथा वहाँका सब रहस्य जान लेनेके लिए रामने विभीषणसे अनीतिकर प्रतिज्ञा की कि रावणका सर्वनाश कर तुम्हें लंकाका राजा बनाऊँगा। बस, विभीषण भ्रातृ-द्रोहके लिए तैयार हो गया। उसने रामको रावणके मरनेके सब उपाय बता दिये। इन कुतंत्रोंसे रामने रावणका वध कर विजय पाई।

सीतापर रामको सन्देह उत्पन्न हुआ। सीताकी भर-पेट निन्दा कर उसे चले जानेको कहा। पर, आत्माभिमानिनी सीताने रामकी घुड़कियोंकी परवाह न करके उचित रीतिसे तर्कपूर्ण उत्तर देकर अपनी पवित्रता प्रकट की। रामसे स्वीकार करते ही बना। दिग्विजय कर आनेपर सीज़रका स्वागत जिस तरह रोमवालोंने किया था उसी तरह अयोध्यावासियोंने रामका स्वागत किया। भरतने धरोहर, राजगद्दी, सौंप दी। सबके दिन सुखसे बीतने लगे।

लेकिन यहीं अन्त नहीं हुआ। रामकी कीर्ति-कथा, सीताकी विपत्तियाँ, उसका गर्भवती होना, आदि बातें लोगोंको मालूम हुईं। फिर जनतामें बुरी अफवाहें उड़ने लगीं। विवाहके समय सीताकी उम्र क्या थी, इस विषयमें भिन्न भिन्न मत हैं। कोई आठ, कोई बारह और कोई अठारह वर्ष बतलाता है। अच्छा हम यही मान लें कि वे विवाहके समय आठ वर्षकी थीं। विवाहके बाद नौ वर्ष अयोध्या-वास किया, फिर तेरह वर्ष वनमें बीते। इसके बाद लंकामें एक वर्ष। इतने दिनोंके बादकी (लंका-प्रवासके बादकी) गर्भोत्पत्ति ही इस अपवादका मूलाधार थी। सीता जानती थी कि सब कुछ विधिके माथे मढ़कर मेरे ऊपर किसी तरहका अत्याचार करनेसे न हिचकनेवाले राम इस परिस्थितिमें मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे। इस लिए उसने थोड़े दिन मुनियोंके आश्रममें रहनेकी इच्छा प्रकट की। रामने यह स्वीकार नहीं किया और प्रजाके सामने पुनः अग्नि-प्रवेश कर अपनी पवित्रताकी परीक्षा देनेको कहा।

जब सन्देहकी जगह थी तब सीताने खुद ही (लंकामें) अग्नि-प्रवेश चाहा था। पर, आज उसे पतिका यह व्यवहार अमानुषिक और नीच जान पड़ा। इसलिए, उसने अग्नि-परीक्षा स्वीकार नहीं की। तब रामने उसे कुछ न कहकर चुपचाप लक्ष्मणद्वारा जंगल भिजवा दिया।

अकेली जंगलोंमें रोती सीताको वाल्मीकिने देखा और वे आदरसे लिवा ले गये। वाल्मीकि जनकके मित्र थे। उन्होंने सीताके मुँहसे आद्योपान्त कथा सुनी। सीताके लिए न्याय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उन्होंने रामका गुणगान करते हुए तथा सीताकी विपत्तियोंका वर्णन करते हुए रामायण लिखी। फिर लव-कुशको वह कथा सिखाकर रामका दर्शन प्राप्त किया। उन कुमारोंके साथ खुद भी रामायणका अभिनय करके प्रजामें सीताके प्रति गौरव उत्पन्न किया।

वाल्मीकिकी रामायण-रचनाका प्रबल कारण इसीको माननेका एक तर्क और है। वाल्मीकि महाकवि थे। उनकी काव्य-कला भी अद्भुत थी। अपने आदर्शके अनुकूल दोष-रहित पत्नी, भाई, सेवक, मित्र आदिका सफलचित्रण सीता, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण आदिके रूपमें करनेवाले वाल्मीकिने रामके चरित्रमें इन सब त्रुटियोंको, जिनका मैं पहले विवेचन कर आया हूँ, त्रुटियोंके रूपमें ही क्यों रहने दिया? इस प्रश्नका एक ही जवाब सूझता है। वह यह कि वाल्मीकि चाहते थे कि रामने सीताके प्रति जो अन्याय-अत्याचार किया है, उसे वे समझें और सीताको पुनः ग्रहण करें। यही उनकी रचनाका प्रधानोद्देश्य है। यदि वे रामके चरित्रमें भी उन त्रुटियोंको न दिखाते तो उनका मनोरथ सिद्ध न होता। वाल्मीकिके कथनानुसार ही रामने अपने कियेपर पछता-कर सीताका आह्वान किया। परन्तु, सीता अपने स्वार्थी पति और नाकमें लगे दुर्गन्ध-रूपी कलंकको कुत्तेकी तरह चाटनेवाली जनतासे ऊब चुकी थी। वह अभिमानिनी थी। अपने बच्चोंका भविष्य किसी तरह अनुकूल बनाने तथा रामको किसी तरह उसके किये अन्यायोंको सुझानेके लिए ही सीता जीवन धारण कर रही थी। इसलिए, राज-सभामें आनेके लिए कहते ही रामके सामने ही उसने प्राण त्याग दिया।

सीताको पुनः स्वीकार करनेके उद्देश्यसे लिखनेपर भी वर्णनमें अद्भुत कवित्व-शक्ति दिखलाने तथा आर्य-पक्षके समर्थनमें धर्म-सिद्धान्तोंको गूँथनेके कारण रामायणको बहुत गौरव प्राप्त हुआ।

वाल्मीकि-निर्मित 'सीता-राम'को बहुत लोग नहीं पहचानते। (खासकर हिन्दी जनता तो तुलसीके 'राम'को ही पहचानती है—अनुवादक) आर्यत्वके प्रचारके कारण इस कथाका समाजमें बहुत आदर हो चला था; इसलिए, बौद्धोंने भी इसी कथाके आधारपर 'दशरथ-जातक' नामक ग्रन्थ अपने मनके अनुकूल रचा। उस कथामें सीता रामकी बहिन बताई गई है! वाल्मीकिने रामको मनुष्य-रूपमें ही चित्रित किया था; पर ई० स० पूर्व २०० वर्षके बाद उसमें किसी सज्जनने अनेक अद्भुत बातें घुसेड़ दीं। फिर रामको भी कृष्णके साथ अवतारोंमें स्थान देनेके वास्ते महाभारतमें भी 'रामोपाख्यान' पीछे जोड़ दिया गया। उसके बाद रामायण अनेक रूप धारण करती हुई वाल्मीकि-रचित आठ हज़ारसे बढ़कर पचीस हज़ार श्लोकोंकी हो गई। उसके बाद वैष्णवोंने बौद्धोंका अनुकरणकर रामायणपर III का ट्रेडमार्क (ऊर्द्ध पुण्ड) लगाकर अपने लिए पेटंट करा लिया। तेलुगूमें रामचरित लिखनेवालोंमेंसे किसीने भी वाल्मीकिका ठीकसे अनुसरण नहीं किया है।

रामायणकी कथा

(१) आदिकाव्य (वाल्मीकिकृत, ८००० अनुष्टुप् छन्द, सी० वी० वैद्य सम्पादित)
(२) दशरथ-जातक (बौद्धोंका)
(३) रामोपाख्यान (महाभारतमें)
(४) पुराणोंकी रामकथा (पद्मपुराणादिमें)
(५) अध्यात्म रामायण
(६) कालिदासके समय तथा उसके बाद तकके करीब २५०० ग्रन्थोंमें

रामायणके आलोचक।

वैद्य, वीबर, म्यूर, वीलर, हपाकिन्स।

अनारकली
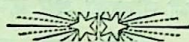
पहला दृश्य
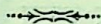
[प्रातःकाल । राजकुमार सलीमका कक्ष । दीवारकी तरफ मुँह कर सोफे-पर सोया सलीम उच्छ्वासके साथ करवट बदलता है । फिर अश्रुपूरित लोचनों-से पासवाले छोटे मेज़की ओर देखता है । एकाएक हकबकाकर उठता है । मेज़के पास जाकर घबराये हुए स्वरसे—]

सलीम—दरबान !

दरबान—(प्रवेशकर) खुदावंद !

स०—इस कमरेमें कौन आया था ?

द०—नहीं जानता गरीबपरवर !

स०—(पास आकर) क्यों नहीं जानता ?

द०—हुजूर !

स०—क्या हुजूर ? (नौकर हाथ मलता हुआ पीछे हटने लगता है । घबराहटके कारण पैर-पर पैर रखता है) अरे, बोलता नहीं ?

द०—मैं अभी आया हूँ, खुदावन्द ! ....

स०—जाकर गुलनारको भेज ।

[गुलनार डरती हुई प्रवेश करती है।]

स०—गुलन, यहाँसे अनारकी कलियोंको किसने हटाया ?

गुलनार—मालूम नहीं हुजूर !

स०—(आँखें लालकर) सच बता ?

गु०—(डरती हुई) हुजूर !—

स०—(जोरसे) क्या हुजूर ?

(गुलनार भयभीत नेत्रोंसे कभी नौकरको और कभी सलीमको देखती है।)

सली०—(नौकरसे) जाओ, उस दरवाज़ेपर। गुलन, तुम भीतर आओ। डरो मत। बोलो।

गु०—खुदावन्द, बड़ा डर लगता है।

स०—डरकी कोई बात नहीं, बोलो।

गुलनार—(डरसे बार बार दरवाजेकी ओर देखती हुई) हुजूर, बादशाहने........नौकरोंको हुक्म दिया है........बागकी सब अनारकलियाँ आगमें झोंक दी गईं........और हुक्म हुआ है कि जो नई नई कलियाँ निकलें वे भी तोड़कर नोच डाली जायँ।....... अफ़वाह सुनती हूँ कि शहरमें अनारके सब दरख़्त काट डाले जायँगे।

स०—(हथेलीपर ठोड़ी रखकर) ओह ! तो गुलन, यह सिर्फ अनारकी कलियोंपर ही चढ़ाई नहीं है। ये छोटी छोटी बूँदें किसी बड़े भारी तूफ़ानका संकेत कर रही हैं।

गु०—खुदावन्द, शहरमें........अफ़वाह——

स०—क्या ?

गु०—हुजूर,........अनारकली——

स०—अच्छा, तुम जाओ।

[गुलनार डगमगाती हुई-सी चली जाती है। सलीम बेज़ार होकर इधर-उधर टहलता है। दरबानका प्रवेश।]

दरबान—हुज़ूर, वज़ीर साहब——

स०—अच्छा, ले आओ।

(सलीम सिर हिलाकर, मानो कुछ समझ गया हो, सोफेपर बैठता है। वज़ीर प्रवेश कर, नौकरको बाहर जानेका इशारा कर सलीमको सलाम करता है।)

अबुलफ़ज़ल—शाहज़ादा साहब, खैरियत तो है?

स०—वज़ीर साहब, अपनी मेज़पर रक्खी हुई अनारकलियोंकी रक्षा न कर सकनेवालेसे खैरियत पूछते हैं?

अ० फ०—आप जैसे तीक्ष्ण बुद्धिके लिए यह सब समझना कुछ मुश्किल न होगा।

स०—अभी तीक्ष्ण बुद्धिकी उतनी ज़रूरत नहीं है वज़ीर साहब, जितनी अधिकारकी!

अ० फ०—शाहज़ादा साहब, एक बात——

स०—फरमाइए।

अ० फ०—बादशाह सलामतको अनारकी कलियोंपर कुछ गुस्सा हुआ है ज़रूर——

स०—गरीब, भोली-भाली, कमज़ोर, अनार-कलियोंपर शाहंशाहका गुस्सा? वज़ीर साहब, यह न्याय-संगत नहीं है। उस कलीको नेस्त-नाबूद करनेके वास्ते बादशाहका कमर कसना कुछ भला नहीं लगता। उस गुस्सेकी जड़को निकाल फेंकना अलबत्ता बादशाहके लायक काम है।

अ० फ०—हुज़ूर, मैं कहता हूँ——

स०—अच्छा——

अ० फ०—गुलाब इस देशका फूल नहीं है। इसको मुग़ल बादशाह खासकर अपने बगीचेमें लगानेके वास्ते अपने मुल्कसे लाये।

स०—जी हाँ।

अ० फ०—उसमें 'पहलवी'की कलमें तो खुद शाहंशाह अकबरने मँगाई हैं। पहलवीसे बेहतर गुलाब और नहीं है। उसपर ख़ास मुहब्बत है बादशाह सलामतकी, और हुजूरकी भी। (सलीम सिर हिलाता है) जब हुजूरने 'पहलवी'का खास बगीचा लगवाया, तो बादशाहकी खुशीका ठिकाना न रहा।

स०—जी।

अ० फ०—इसलिए, अबसे 'पहलवी' को मुग़ल-खानदानका चिह्न बनाना और समझना होगा।

स०—ओह!

अ० फ०—ऐसे 'पहलवी' गुलाबोंको हुजूर अपनी मेज़पर उलटकर बेइज्जतीके साथ रखते हैं, और उसपर अनारकी कलियोंसे उन्हें ढक भी देते हैं।

स०—(आतुरतासे) इसलिए——

अ० फ०—पहलवी गुलाब जितना बहुमूल्य है, अनारकली उतनी ही तुच्छ! अनारकली तो बारे आम मिल भी सकती है। (सलीम कुछ सोचता हुआ दूसरी तरफ देखता है। अबुलफजल रुक-रुककर सलीमकी ओर देखता हुआ सावधानीसे कहता है।) इतना ही नहीं, मामूली फूलोंमें भी अनारकी कोई हस्ती नहीं। पहलवी गुलाब बादशाहोंका चिह्न होगा, तो अनार गुलामोंका——

स०—(अकस्मात् इधर घूमकर) वज़ीर साहब, यह कविताकी भाषा छोड़कर साफ़ साफ़ बातें करें। मैं अनारकलीको दिलसे प्यार करता हूँ। वह गुलाम है और मैं शाहज़ादा हूँ, तो भी मैं अपने हृदयके प्रेमाधिक्यको दिखानेके लिए ही 'पहलवी' को अनारकलीके साथ रखकर इज्जत देता हूँ। मैं यह नहीं छोड़ सकता, चाहे जो हो।—अनारकली गुलाम नहीं है, वह सलीमकी प्राण है। सलीम चाहे जिस हालतमें हो अनारकलीका उसके आधेपर, नहीं-नहीं, पूरे सलीमपर अधिकार है। सलीम अनारकलीका है यह मुझे पक्का भरोसा है। उसका नतीजा चाहे जो हो, मैं उसके लिए तैयार हूँ।

अ० फ०—शाहज़ादा साहब, शादीकी बात सोचना——

स०—वज़ीर साहब, आप शायर भी तो हैं! थोड़ी देरके लिए उस तुच्छ हृदय-हीन राजनीतिको भूल जाइए। निर्मल कवि-हृदयसे विचारकर कहिए। प्रेमकी पवित्रताको अपवित्र नीच समझना कितना पाप है! पवित्र प्रेमका अवगाहन करके भी जो हृदय उसके लिए नहीं खड़ा हो सकता, उसका नाश हो जाना ही ठीक है। जिस प्रेमके बिना यह भूमि भूमि नहीं रहती, आकाश आकाश नहीं, सृष्टि सृष्टि नहीं रहती; पंचतत्त्वोंके जिस प्रेमके बिना यह शरीर शरीर नहीं रहता, जिस पवित्र बंधनको तोड़ डालनेपर मनुष्य मनुष्य नहीं रहता,—सृष्टिके नीच प्राणियोंसे भी नीच हो जाता है, ऐसे पवित्र उत्कृष्ट प्रेम-बंधनको मैं इन अकरुण हाथोंसे नहीं तोड़ सकता। अनारकली और सलीमके प्रेम-प्रवाहमें कोई बाधा नहीं आ सकती। यह धारा बाँधोंके ऊपरसे होकर अथवा उन्हें तोड़कर बहेगी ही,—चाहे जिस समुद्रमें जाय; पर मरुभूमिमें

विलीन हर्गिज न होगी। इसमें बाधा बनकर आनेवालोंको भविष्यत्का परिणाम भी सोच लेना होगा। मेरा संकल्प यही है। (आँखें बन्द कर लेता है।)

अ० फ०—(कुछ रुककर) शाहज़ादा साहब, फारसी और संस्कृत-साहित्यके प्रेम-सम्बन्धी सिद्धान्त आपने एक ही दममें कह डाले।

स०—(जल्दीसे उठकर वज़ीरके पास जाता है। आतुरतासे—) वज़ीर साहब, आप कवि हैं, आपके पास हृदय है। इधर आइए, (हाथ पकड़कर कक्षके बीचमें ले जाता है और दरवाजेकी ओर अँगुलीसे संकेत करता हुआ कहता है, मानों एक-एक शब्दका अनुभव कर रहा हो—) इस जीवनमें सबसे पहले अनारकलीका प्रवेश इसी द्वारसे हुआ। चकित होकर सलीमने देखा उसका वह सौन्दर्य, वह अबोधता, मुग्धता,—अनारकलीकी वह भंगिमा, वह सुकुमार शरीर, वक्षःस्थलपर विकसित यौवनकी वह रेखा, पतली कमरका बल खाना, मोतीमें आबकी तरह वह मुखका लावण्य,—ओह! वह अमृत क्षण!....वज़ीर साहब, ऐसी कोई कला नहीं जो मुझे व्याकुल न करती हो। संगीत, कविता, चित्र,—सबमें अनारकलीकी छाया ही———वजीर साहब, मैं क्या बताऊँ, कहाँ तक वर्णन करूँ, इसका कोई अन्त नहीं। (आँखें बन्दकर सोफेपर लेट जाता है।)

अ० फ०—(रुककर, धीरेसे) शाहज़ादा साहब, प्रेमोत्फुल्ल आपके हृदयसे निकले हुए उद्गारोंको सुनकर चकित है यह कवि अबुल-फज़ल———

स०—(हिलता है, आँखें खोलता है, फिर भौंहें टेढ़ी करके

कहता है—) अच्छा, तो अब राजनीति-विशारद वज़ीर साहब बोलेंगे शायद !

अ० फ०—(सिर नीचा करके) जी....

स०—वज़ीर साहब, प्रेम-विहीन साम्राज्य मेरी अभिलाषाकी वस्तु नहीं ।

अ० फ०—किन्तु, एक गुलामसे शाहज़ादेकी शादी ! इसको रिआया कभी पसन्द न करेगी ।

स०—क्या ? रिआयाको क्या अधिकार है ? मेरे सुख-दुःखका, मेरे अन्तःकरणके विधानका निर्णय करनेवाली प्रजा कौन होती है ? क्या मैं रिआयाका गुलाम हूँ ? क्या राजकुमारका हृदय पत्थर-का बना होता है ? क्या उसके हृदयमें उष्ण रक्त-धारा प्रवाहित नहीं होती ? क्या रिआया यह नहीं जानती ?

अ० फ०—ज़रा आपको सोचकर देखना चाहिए । हिन्दू-मुसलमानोंके विरोधको मिटाने और मुल्कको सुखी बनानेके वास्ते ही शाहंशाहने आमेरकी राजपुत्रीसे विवाह करनेका साहस किया था । इससे अभी तक मुग़लों और राजपूतोंमें कुछ लोग उग्र रूप धारण किये हैं । ऐसी हालतमें आप गुलाम लड़कीसे शादी करेंगे, तो——

स०—यह सब सोच करके ही मैंने यह इरादा पक्का किया है । मुसलमानी मूर्खताको छोड़कर तथा हिन्दू स्त्रीको पत्नी-रूपमें स्वीकार कर मेरे पिताने भावी भारतके लिए नवीन मार्ग प्रशस्त किया है,—नूतन भ्रातृत्वकी सृष्टि की है । वैसे ही हिन्दू स्त्रियोंकी धर्मान्धता-को छोड़ एक विधर्मी मुग़ल पतिपर भी सहज पति-भक्ति और प्रेम

रखकर मेरी माताने यह साबित कर दिया है कि पवित्र प्रेममें धर्मका कोई स्थान नहीं,—वह कोई रुकावट नहीं डाल सकता। हिन्दू-मुसलमान-सम्मेलन, अकबर और आमेरी रानीके प्रेमका फल,—'सलीम' मैं जिस अपूर्व प्रेम-साम्राज्यकी सृष्टि करने जा रहा हूँ, उसमें बादशाह और गुलामका भी कोई फर्क न होगा। विश्व-भ्रातृत्व, प्रेम और समानताकी स्थापना होगी। वज़ीर साहब, आप पिताजीसे कहिए। मैंने प्रकट रूपसे अनारकलीसे विवाह करनेका निश्चय किया है। अब इसमें कुछ भी बाधा नहीं डाली जा सकती। चाहे उसका नतीजा कुछ भी हो। (रुककर, धीरेसे) आप इसी तरह उनसे कहिए, मैं आपके कवि-हृदयकी तारीफ करूँगा।

अ० फ०—जनाब, आपने बहुत खूबीसे अबुलफ़ज़लके दो हिस्से कर दिये। न्याय, सरलता, मुग्धता और कोमलता-प्रधान कवि तथा साम्राज्यकी सावधानीसे रक्षा करने और बादशाहको सलाह देनेवाले राजनीतिज्ञमें झगड़ा खड़ा कर दिया है। इस झगड़ेको मिटाकर मैं कोई फैसला नहीं दे सकता। बादशाहसे कहूँगा।

स०—मगर मेरे संकल्पमें परिवर्तन नहीं हो सकता, यह निश्चित जानिए। तो अब——

(मेजके पास जाकर अनारकलीके दलोंको अतृप्त भावसे उठाकर ऊपरकी ओर मुँह कर लेता है। सजल नेत्रोंसे उन दलोंको देखता है। अबुलफ़ज़ल यह सब गौरसे देखता हुआ जाता है।)

[पर्दा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[दोपहर। अकबरका मंत्रणा-गृह। अकबर इधर-उधर टहल रहा है। अबुलफ़ज़ल खड़ा है।]

अकबर—अबुल !

अबुलफजल—जहाँपनाह !

अक०—मामूली मानवताको निगल जानेवाला यह राज-धर्म कैसा है ?

अ० फ०—इस समस्याका हल होना कठिन है।

अक०—अबुल, आमेरकी राजकुमारीसे विवाह करते समय भी मेरा मन इतने पशोपेशमें न पड़ा था। कैसे इसका समाधान होगा ? कुछ समझमें नहीं आता। ओह ! यह राज-धर्म बड़ा ही दारुण है। इससे अच्छे वे मज़दूर हैं, जो सहज मानवताका विकास कर जीते हैं।

अ० फ०—अगर, अनार और शाहज़ादेकी शादीकी मंजूरी दे दी जाय तो ?

अक०—यह कैसे होगा ? इधर मुग़ल राजपूतानीसे शादी करनेके कारण ही मेरी निन्दा करते हैं, विरोध भी करते——पर इसे भी कोई राजनीतिक दाँव समझकर चुप हैं। उधर वंशाभिमानी वीर राजपूत लोग बिहारीमलपर राजपूत-कन्याको मुगलोंके हाथ सौंपनेके कारण दाँत पीस रहे हैं। मेरे द्वारा चलाये गये सुधार ही जब समाजमें अभी तक काफी हलचल मचाये हुए हैं, तब अगर उस हालतमें मैं शाहज़ादा और एक गुलाम लड़कीकी शादीकी मंजूरी दे दूँ, तो मुल्कमें क्या होगा, तुम यह सोच सकते हो। चाहे वह प्रेमकी प्रतिमा हो, चाहे अपूर्व सुन्दरी हो, चाहे अबोध सरला हो, परन्तु

गुलाम बालिकासे विवाह करनेवाले राजकुमारको इस मुल्कमें कोई मान नहीं सकता। इतना ही नहीं, लोग यह भी कलंक लगायेंगे कि अकबरके सुधारोंका यही विषम परिणाम हुआ। मुग़ल-राजपूतके सम्मेलनसे यह नीच जाति पैदा हुई। सलीम और अनारकलीके सम्बन्धको हृदय स्वीकार करता है,—पर मस्तिष्क नहीं।

अ० फ०—मानव-जीवनमें इन दो वस्तुओंने ही चमक ला दी है जहाँपनाह! एकका सम्बन्ध हृदयसे है और दूसरीका मेधासे। इन दोनोंमें जब समन्वय हो जायगा, तभी मानवता उच्च स्थानपर विराजमान होगी। इन दोनोंमें जबतक विरोध रहेगा, तब तक पशुको देखकर भी मानवको ईर्ष्या करनी पड़ेगी।

अक०—इस समस्याको तुमने बहुत अच्छे ढंगसे सुलझाया है। प्रेमकी उत्कृष्टताका स्वाद जाननेवाला अकबरका हृदय अनार-सलीमके पवित्र प्रेमको पूज्य भावसे स्वीकार करता है; परन्तु, राजनीतिक नैपुण्यको अनुभवोंद्वारा प्राप्त करनेवाला अकबरका मस्तिष्क, उनके विवाहको स्वीकार नहीं कर सकता।

अ० फ०—जी हाँ, सच्चा विवेक मस्तिष्कसे संबंध रखता है अथवा हृदयसे, यह अभी तक हल नहीं हुआ। हृदयको शून्य बनाकर मेधा-शक्तिको पूर्ण विकसित करनेवाले शंकराचार्य आदर्श हैं या अपने हृदयको मानव-ज्ञान और ऐश्वर्यकी खान बनानेवाले बुद्ध?—इन दुविधाओंके बीच हमें नहीं पड़ना चाहिए। जो इसमें आ जाते हैं, उन्हें किसी महानाशकी तरफ़ मुड़ना ही पड़ता है। यह समस्या ही मानव-चरित्रको जटिल और दारुण बना रही है।

अक०—अबुल, मैं किसी भी निर्णयपर नहीं पहुँच रहा हूँ।

दरबान—(प्रवेश कर) जहाँपनाह, अनारकली—

अक०—उसे अकेली ही यहाँ ले आओ।

(अनारकलीका प्रवेश, दीनतासे सिर झुका, सलाम कर खड़ी होती है। अकबर कुछ भी नहीं बोल सकनेके कारण इधर-उधर टहलने लगते हैं।)

अ० फ०—अनारकली, तुम यहाँ किस लिए बुलाई गई हो,—मालूम है ?

अनार०—नहीं जानती, वज़ीर साहब !

अक०—अनारकली, (पास आकर उसकी ओर देखता है, फिर लौट जाता है। पुनः एक ठंढी साँस ले पास आकर कहता है—) अनारकली, बादशाहतके काम बड़े कठिन हैं। कभी कभी उसे मानवताके भी विरुद्ध—

अनार०—खुदावन्द !

अक०—(इधर-उधर टहलता हुआ) अनार, जानती हो, अकबरकी बादशाहत कहाँ है ? राजाओंके सामने, प्रजाकी दृष्टिमें बादशाहत हीरेके समान है, इसमें आँखोंमें चकाचौंध पैदा करनेवाली चमक है,—इतना ही नहीं, हीरेकी कठोरता भी है। फिर भी, अकबर पाषाणवत् कठोर बादशाह ही नहीं है, वह मनुष्य भी है। बे-ताजका अकबर तुम्हारे प्रेमका कायल है।—यह सब होते हुए भी तुम्हें अपना निर्णय सुनाता हूँ। सलीमके साथ तुम्हारे प्रेमकी जो वृद्धि हो रही है, उसे मुझे कठोरतासे रोकना ही पड़ेगा। अब तुम सलीमको नहीं देख सकतीं। अन्तमें यह भी कहनेको लाचार हूँ कि प्रियतमका दर्शन ही तुम्हारा प्राण-घातक होगा। (सोफेपर बैठ जाता है।)

अ० फ०—अनारकली, दुनियामें इन्साफ नहीं है। समाज-द्वारा निर्मित ऊँच और नीचके भेदको न माननेसे समाज कदापि क्षमा नहीं करता,—चाहे वह व्यक्ति बड़ेसे बड़ा हो या छोटेसे छोटा।

अनार०—वज़ीर साहब, मुझे कुछ नहीं मालूम पड़ता।

अक०—(शासनके ढंगसे) तुम सलीमसे प्रेम नहीं कर सकतीं।

अनार०—खुदावन्द, जहाँपनाहके हुक्मके खिलाफ मैं चूँ नहीं कर सकती। मैं शाहज़ादासे प्रेम नहीं करूँगी,—अगर यह बात मेरी ताकतसे बाहर न हो। जहाँपनाह, मैं जान-बूझ कर उनसे प्रेम नहीं करती। मैं खुद ही बहुत डर रही हूँ। कहाँ शाहज़ादा और कहाँ यह गुलाम? जहाँपनाह, मुझे बचाइए। कितना ही रोकती हूँ, पर दिल रुकता नहीं है। गुलाम होनेके कारण बराबर दूसरोंके ही अधीन रही; इसलिए, शायद अपनेको वशमें रखनेकी ताकत मुझमें नहीं।

अ० फ०—आह!—अच्छा, इसके वास्ते कोशिश करोगी?

अनार०—वज़ीर साहब, मैं कुछ ज़्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। माफ कीजिए, मैं हुजूरके सामने ठीकसे कहना चाहती हूँ पर कह नहीं पाती हूँ। हिमालय पार कर आते समय एक ऊँची चोटीसे उतर रही थी। बगलमें झाँककर देखा, तो बहुत गहरी खाई देख पड़ी। उसकी गहराई बहुत भयंकर थी। कलेजा काँप गया, मैं घबरा गई; लेकिन उस गहराईने मेरे थरथर काँपते हुए हृदयको खींचना शुरू किया। उस आकर्षणसे अपनेको न रोक ही सकी और न कूद ही सकी। पगलकी तरह चिल्ला उठी—'कूदूँगी कूदूँगी!' तब मेरी माँ आँखोंपर पट्टी बाँधकर मुझे धीरेसे नीचे उतार लाई। सच कहती हूँ, वज़ीर साहब, शाहज़ादाको देखनेपर मेरी वही हालत हो जाती है।

(अकबरके पैरोंके पास घुटने टेककर रोती हुई) खुदावन्द, माफ करें। मैं अपनेको रोक नहीं सकती हूँ। जब तक उनकी नज़रके सामने, उनकी बगलमें, खड़ी रहती हूँ, तब तक न मालूम मैं क्या हो जाती हूँ। और उनसे अलग होते ही मालूम पड़ता है, जैसे मेरे अन्दर सब-कुछ नष्ट हो गया है,—मैं शून्य-सी हो जाती हूँ। मैं छिपा नहीं सकती, झूठ भी नहीं बोल सकती, सच कहती हूँ; मैं उनसे प्रेम किये बिना नहीं रह सकती, जहाँपनाह, मुझे मरवा डालिएं, मैं ऐसे नहीं जी सकती———

(सिसक-सिसककर रोती है। अकबर आँखें बन्द कर लेता है। अबुलफ़ज़ल दो मिनट तक निश्चेष्ट रहते हैं। अकबर बहुत इज्जतके साथ अनारकी बाँह पकड़कर उठाते हैं।)

अक०—बेटी, तुम्हारा प्रेम पवित्र है। ओह, इतने सरल हृदयको दुःख देकर, ऐसे पवित्र प्रेमको चोट पहुँचाकर, मैं कुछ भी निर्णय नहीं कर सकता ! (रुककर, अनारकी ठुड्ढी पकड़कर) अनार, मुझे दुःख हो रहा है कि मैं भी गुलाम क्यों न हुआ ? आह ! वैसा होता तो आज तुम्हें गर्वसे और प्रेमसे पुत्र-वधूके रूपमें ग्रहण कर सकता। अनार, ससुरकी इस बादशाहतको———

अनार०—जहाँपनाह ! जहाँपनाह ! बस, बस, अब मुझे ज़िन्दगी नहीं चाहिए,—अब मैं जीना पसन्द नहीं करती।

(ज़ोरसे रोने लगती है। अबुलफ़ज़ल इशारा करते हैं। दरबान अनारकलीको सहारा देकर ले जाता है। थोड़ी देर तक निस्तब्धता।)

अक०—(लम्बी साँस लेकर) अबुल !

अ० फ०—हजूर, इस जीवनमें यह महायोग है। अभी मैं मामूली दुनियामें नहीं हूँ। विश्व-तलमें प्रज्वलित बडवाग्निके

प्रकाशमें मैं अमूल्य रत्नोंको देख रहा हूँ। बड़वाग्निकी इस ज्वालाको, और तरंगोंके इस संक्षोभको मेरा मस्तिष्क नहीं सह सकता है। हृदयमें इस धू-धूकर चलनेवाले तूफ़ानके सामने विश्वको कम्पायमान करनेवाले बाहरी तूफ़ानकी कोई हस्ती नहीं। ओह!

अक०—अबुल, मैं कुछ भी निर्णय नहीं कर सकता। खाक है यह बादशाहत! यदि इच्छित वस्तुको प्राप्त न होने देनेवाली गुलामी अनारकलीका अभाग्य है, तो शुद्ध निष्पक्ष अन्तःकरणसे निकलनेवाले न्याय-विचारका अनुसरण न करने देनेवाली साम्राज्य-लोलुपताकी गुलामी मेरा अभाग्य है। अबुल, 'परिषत्' का फैसला मैं आँख मूँदकर मान लूँगा। बस। मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है।

(तेजीसे उठकर प्रस्थान)

[पर्दा गिरता है]

तीसरा दृश्य

[सायंकाल। छह फीट ऊँची ईंटोंकी दीवार। बिजलीकी चमककी तरह लपककर सलीम उस दीवारपर गिर पड़ता है। दोनों हाथोंको फैलाता है, फिर दीवारको छातीसे सटाकर खूब ज़ोरसे रोने लगता है। पागलोंकी तरह हृदयको ठोंकता हुआ—]

सलीम०—अनार! अनार!! अनार!!! (मिट्टीके पुतलेकी तरह दीवारपर झुक जाता है। निश्चेष्ट हो जाता है। नौकर दौड़ा हुआ आता है। देखकर स्तम्भित रह जाता है। सलीम एकाएक उठकर पागलोंकी तरह दीवारकी ईंट उखाड़नेकी चेष्टा करता हुआ) अनार! अनार!! अब भी ज़िन्दा हो? इस प्रेमने अभी तक तुम्हारे सुकुमार प्राणोंको बाँध रक्खा है?

नौकर—खुदावन्द !

सलीम—दीवारमेंसे कण्ठ-ध्वनि आ रही है,—सुना ?

नौ०—(डरते हुए) हुजूरको वैसा मालूम हुआ। अब तक ज़िन्दा रहना असम्भव है।

स०—असंभव ? प्रेमके लिए कुछ असम्भव नहीं है। देखो, भीतर प्राण तड़फड़ा रहा है।

नौ०—उसकी अन्तिम साँस तक ज़ल्लाद लोग यहीं थे हुजूर ! बादशाहका ऐसा ही हुक्म था।

स०—आह ! (शरीर और आँखें हिलती-सी हैं। उसाँसें लेता है। कुछ सोचता हुआ दीवारकी ओर देखकर) अनार ! (कटार कलेजेसे भिड़ाता है। नौकर घबराकर हाथ उठाता है।) तुम डरो मत, मैं आत्महत्या नहीं करूँगा। (कलेजेपरका अँगरखा हटाता है। कटारकी नोकसे थोड़ा चमड़ा चीरता है। कटारकी नोकमें रक्तके कुछ कण लग जाते हैं।)

नौ०—(घबराकर) हुजूर !

स०—कुछ डर नहीं है। यह कटार लेकर शाहंशाहके पास जाओ और कहो कि अनारकली जिस दीवारमें चुनी गई, उसके पास खड़े होकर सलीमने यह सबक सीखा है—'साम्राज्य ही हमारी नामवरी है,—और रिआया ही हमारी तकलीफें।' हममेंसे आज सहज मानवताका नाश हो गया है। यह अनारकलीका शाप है। —कहो कि अनारकली दीवारमें दम घुट-घुटकर नहीं मरी; बल्कि, अकबरके पुत्रने इस कटारसे उसकी हत्या की है। अब इन रक्त-बिन्दुओंका चुम्बन कर नाचनेको कहो बादशाहसे !

(कटार देकर) यह खून अनारकलीका है, जो सलीमके कलेजेसे बहा है। यह रक्तकी लालिमा अनारकलीका भयंकर शाप है, सलीमके प्रेमका कभी न सूखनेवाला दाग है। पिता-पुत्रके सहज प्रेमको नाश कर दिया है इस खूनके दागने। हम मनुष्य नहीं हैं। सहज, सरल हृदयसे हमें जीना न चाहिए। आगे आनेवाले शाहज़ादोंके सामने अकबरने यही सबक रक्खा है। सरल-हृदया अनारकलीका यह मरण ही,—एक अनाथ गुलाम लड़कीकी ज़बरदस्ती मौत ही,—मुग़ल-खानदानके लिए शाप है। अनारकलीका यह शाप मुग़ल-वंशपर अवश्य पड़ेगा। बादशाह और गुलाममें समत्व देखनेवाली एक दृष्टि है। उस न्याय-नेत्रने अनारकलीके शापको मुगल-वंशकी भावी भाग्य-रेखाके रूपमें स्वीकार किया है। जाओ, बादशाहसे कहो कि अनारकलीका अन्त, और मुगल-वंशकी भावी दशाके चिह्न-स्वरूप मेरे प्रेम-रक्तसे भीगी हुई इस कटारकी कब्र, अपने सिंहासनके आगे न्याय-शालामें सोनेके गारे और संगमरमर पत्थरसे बनवा लें। (पीछे घूमकर) इस पवित्र प्रेम-देशमें मैं अकेला ही रहूँगा। इधर कोई आने न पावे। जाओ। (नौकर धीरेसे चला जाता है। सलीम नमाज़की तरह झुककर दीवारके पास घुटने टेककर हाथ ऊपर उठाता है। दीवारपर सिर रखकर) अनार! अनार!! अनार!!!

(उच्छ्वासकी तरंगोंके साथ सिसक-सिसककर रोता है।)

[पर्दा गिरता है।]

समाप्त